सुलभ साहित्य माला

विकास

[एक नाटकीय संवाद]

लेखक

सेठ गोविन्ददास

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम वार] संवत् १९९८ [मूल्य ।।=)

कृतज्ञता-प्रकाश

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस सुलभ-साहित्य-माला के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस माला में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है, उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस माला के द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

मन्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

दो शब्द

मध्यप्रांत के प्रसिद्ध देशभक्त सेठ गोविन्ददास जी हिन्दी साहित्य के विद्वान तो हैं ही साथ ही श्रेष्ठ नाटककार और एक ऊँची श्रेणी के कलाकार हैं। आपने कई नाटक-ग्रंथों की रचनायें की हैं जो हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखते हैं। आपके नाटक भावना, विचार तथा मानवीय अनुभूति से ओतप्रोत होते हैं। 'विकास' नाटक भी सेठ जी की एक कलात्मक रचना है। इस नाटक को सम्मेलन ने अपनी 'साहित्यरत्न' परीक्षा में स्वीकृत किया है। हमें आशा है कि 'विकास' भी सेठ जी के अन्य नाटकों की भांति अधिक से अधिक लोकप्रिय होगा और इससे हिन्दी साहित्य के एक विशेष अंग की पुष्टि भी होगी।

विनीत

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

प्रयाग

२० मई १९४१

निवेदन

'विकास' को मैंने 'नाटकीय संवाद' कहा है। हिन्दी में उपयुक्त रंगमंच होने पर मेरे अन्य नाटक खेले जा सकते हैं, लेकिन यह दावा मैं 'विकास' के संबंध में नहीं कर सकता। हाँ, यदि पश्चिमी रंगमंचों के सदृश रंगमंच भारत में बन जावें तो दूसरी बात है। बैल्जिम के महाकवि मैटरलिंक का 'ब्लूबर्ड' अगर सफलता पूर्वक खेला जा सकता है, तो 'विकास' भी, पर यह बहुत दूर की बात है। 'विकास' का फिल्म अवश्य बन सकता है, यद्यपि उसके लिये भी कुछ संवादों में परिवर्तन करना पड़ेगा। इन्हीं कारणों से मैंने इसका नाम 'नाटकीय संवाद' रखा, 'नाटक' या 'फोटोप्ले' नहीं।

'विकास' सन् १९३२ में मेरी दूसरी जेल-यात्रा के समय नागपुर जेल में लिखा गया था। इसे लिखने में मुझे जितना समय लगा, उतना अपने किसी अन्य ग्रंथ को लिखने में नहीं। गत आठ वर्षों में इसमें कई परिवर्तन भी हुए; फिर भी इसके इस समय के रूप और सन १९३२ के रूप में वर्तमान युद्ध का प्रसंग जोड़ देने के अतिरिक्त और कोई खास रद्दो-बदल नहीं हुआ।

इसके गान मेरी पुत्री रत्नकुमारी के लिखे हुए हैं।

गोपालबाग
जबलपुर
कार्तिक शुक्ल ११, १९९७

गोविन्ददास

वि का स

[एक नाटकीय संवाद]

स्थान—एक गृह का शयनागार

समय—रात्रि

[आधुनिक ढंग का शयनागार है। तीन ओर दिवालें दिखती हैं। दीवालें और छत आसमानी रङ्ग से रँगी हुई हैं। दीवालों पर तैल चित्र टँगे हैं। छत से बिजली की बत्तियाँ तथा श्वेत पंखा झूल रहा है। फ़र्श पर कालीन बिछा है। सामने की दीवाल के बीच में शीशे के दरवाज़ों की सुन्दर आलमारी रखी है। आलमारी के दोनों ओर दो द्वार हैं जिनमें काँच के दरवाज़े हैं। दाहनी ओर की दीवाल के बीचों बीच गद्दी दार सोफ़ा रखा है। उसके आसपास दो आराम कुर्सियाँ हैं। सोफ़ा के सामने टेबिल है। बायीं ओर की दीवाल के सहारे 'टायलेट' के सामान से सजी हुई सिंगार मेज (ड्रेसिङ्गटेबिल) और एक कुर्सी रखी है। कमरे के बीच में पीतल के दो पलँग बिछे हैं। एक पर एक सुन्दर युवक तथा दूसरे पर एक सुन्दर युवती

निद्रामग्न हैं। दोनों के शरीर चादरों से ढँके हुए हैं, परन्तु उनके मुख दिखायी देते हैं। कमरे में बिजली की नीली बत्ती का मन्द प्रकाश है। एकाएक अँधेरा हो जाता है। पुनः प्रकाश फैलता है। स्थल और समय वही है। शयनागार के स्थान पर क्षितिज दिखायी पड़ता है। क्षितिज पर चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ है, तथापि चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होता। दूर पर धुँधली पर्वत श्रेणी दिखती है, उसके आगे वृक्षावली हैं। निकट के वृक्षों पर धुँधले पुष्प-गुच्छ और फल समूह दिखायी देते हैं। वृक्षों के एक ओर नदी बह रही है, जिसका प्रवाह चाँदनी में चमक रहा है। वृक्षों के बीच में यत्र-तत्र मंदिरों के शिखर तथा प्रासाद एवं गृहों के ऊपरी भाग दिखायी देते हैं। कहीं-कहीं धुँधले-धुँधले मार्ग दिखते हैं। क्षितिज के ऊपर आकाश में छोटे-बड़े अगणित तारागण हैं, कोई रह-रह कर चमक रहा है और किसी-किसी का प्रकाश स्थिर है। चलती हुई वायु का शब्द हो रहा है। धीरे-धीरे उस शब्द में गायन की ध्वनि सुनायी पड़ती है—]

अहो, यह प्रकृति-बाल छबिवान,
सतत नियति से निश्चित इसका पतन और उत्थान।
मुरझा मुँदते नयन युग सह दुख झञ्झावात,
खिल खिल हँस उठते कभी लख सुख-स्वर्ग-प्रभात;
इसी क्रम से यह रोदन गान,
करता प्रकृति-बाल छबिवान।

[इस गायन का अन्तिम चरण गाते हुए क्षितिज पर ऊपर

उठता हुआ एक श्वेत मनुष्य-शरीर दृष्टिगोचर होता है। क्षितिज तक उठ वह सिर उठा आकाश की ओर देखने लगता है। उसी समय आकाश में गायन की ध्वनि सुनायी पड़ती है—]

शैशव को अतिक्रान्त कर, चढ़ विकास सोपान,
ज्ञान उच्चतम शिखर को प्रकृति नित्य गतिमान;
गान में क्यों रोदन का भान,
अहो, यह प्रकृति-बाल छबिवान!

[गायन का अन्तिम चरण गाते हुए आकाश से क्षितिज पर एक मनुष्य-शरीर उतरता है। वह नील वर्ण का है। पीछे आया हुआ व्यक्ति पहले आये हुए व्यक्ति का आलिङ्गन करता है और दोनों क्षितिज से उतर सामने की ओर आने लगते हैं। दोनों के निकट आने पर ज्ञात होता है कि क्षितिज पर नीचे से उठने वाला व्यक्ति एक अत्यन्त सुन्दर गौर वर्ण की युवती है। वह श्वेत फूलों से युक्त श्वेत रङ्ग की साड़ी और चोली धारण किये हुए है एवं दृष्टि को चकाचौंध करने वाले श्वेत रत्न जटित आभूषण पहने है। ऊपर से क्षितिज पर उतरने वाला व्यक्ति एक परम सुन्दर नील वर्ण का युवक है। वह चमकते हुए सितारों से युक्त चपकन और नील धोती धारण किये है एवं आभा-पूर्ण नीलम के आभूषण।]

युवक—(और भी निकट आते हुए युवती के गले में हाथ डाल)

वही प्राचीन मत भेद है, प्रियतमे, वही प्राचीन। जब तुम यह गायन गाने लगती हो तभी मैं विह्वल-सा हो

उठता हूँ। मुझ से चुपचाप रहा ही नहीं जाता और तुम्हारी भूल सिद्ध करने को, तुमसे सम्भाषण करने के निमित्त, हे असंख्य आकारों को उत्पन्न करने वाली उर्वरा, निराकार होने पर भी मुझे तुम्हारी सृष्टि की अब तक की उत्पत्ति का यह सर्वश्रेष्ठ आकार धारण करने को बाध्य होना पड़ता है।

पृथ्वी—यह गान गाये बिना मुझसे भी तो नहीं रहा जाता, प्रियतम। मैं जानती हूँ, तुम इसका प्रतिवाद करने के लिए अनंग होने पर भी सांग होगे। निराकार से कौनसा आकार धारण करोगे यह भी मैं जानती हूँ; अतः मैं पहले से ही इस स्वरूप में तुम्हारे स्वागत के लिये उपस्थित हो जाती हूँ।

आकाश—किन्तु, मैं तो देखता हूँ, प्रिये, कि तुम अकेली ही इस भ्रम में नहीं पड़ी हो, (अँगुली घुमा सामने के तारागणों की ओर सङ्केत करते हुए) तुम्हारे इन सभी बन्धुगणों को यही भ्रम है कि सारी सृष्टि चक्रवत घूम रही है; उत्थान होता है और पुनः पतन। समस्त सृष्टि निरन्तर उत्थान की ओर जा रही है, अतः विकास ही इसका निश्चित पथ है, इसका इन्हें विश्वास ही नहीं होता। तुम्हारे सभी बान्धव इसी प्रकार के गायन गाया करते हैं। जब-जब मुझे उनके ये गायन सुन पड़ते हैं, तभी मुझे उनकी सृष्टि की उत्पत्ति का सर्वश्रेष्ठ आकार ग्रहण कर, उनके भ्रम का

निवारण करने का प्रयत्न करना पड़ता है। (पृथ्वी का मुख चूमते हुए) प्राणेश्वरी, अत्यन्त बुद्धिमती होने के कारण तुम इला कहलाती हो, किन्तु, इतने पर भी तुम्हारे इस मूर्खतापूर्ण भ्रम का क्या कारण है, जानती हो ?

पृथ्वी—(आकाश का दृढ़ालिङ्गनकर) क्या, तारापथ ?

आकाश—तुम्हारा स्वयं चक्रवत घूमना। तुम्हारे स्वयं के घूमने के कारण तुम्हें सारी सृष्टि उसी प्रकार घूमती हुई दिखायी पड़ती है। इस भ्रम में अचल हो जाने के कारण, आठों पहर चौंसठों घड़ी चलित रहने पर भी तुम अचला कहलाती हो। तुम्हारे बन्धु गणों का यह भ्रम भी उनके स्वयं के घूमने के कारण ही है।

पृथ्वी—तुम्हारे इस तर्क का तो यह उत्तर हो सकता है, अन्तरिक्ष, कि तुम स्वयं उन्नत, अत्यन्त उन्नत हो, अतः तुम्हें यही भ्रम रहता है कि सारी सृष्टि उन्नति की ओर ही अग्रसर है।

आकाश—(आश्चर्य से) भ्रम! और मुझ अनन्त को! बात यह है, हृदयेश्वरी, कि तुम्हें और तुम्हारे बन्धुगणों को केवल अपनी सृष्टि का ही ज्ञान है, किन्तु मेरा सम्पर्क तो सभी से है। तुम और वे प्रथक्-प्रथक् रूप से नहीं जानते कि सभी ओर उन्नति की कैसी धूम मची हुई है।

पृथ्वी—मुझे चाहे अपने अतिरिक्त और किसी का ज्ञान न हो, किन्तु

मैं इतना जानती हूँ कि समस्त सृष्टि एक ही नियम से शासित होती है। जो मेरे यहाँ का नियम है वही समस्त सृष्टि का है।

आकाश—यह मैं भी मानता हूँ कि समस्त सृष्टि का एक ही नियम है, इसीलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हारी सृष्टि भी उन्नति की ओर ही जा रही है।

पृथ्वी—इसका तुम्हारे पास कौन-सा प्रमाण है कि उन्नति ही सृष्टि का नियम है ?

आकाश—प्रमाण ? एक ही प्रमाण है।

पृथ्वी—यह क्या ?

आकाश—यही कि अबतक जो कुछ हुआ है भविष्य में भी वही होगा। देखो, प्राणेश्वरी, इस सृष्टि में सर्वप्रथम मेरी उत्पत्ति हुई है। मुझ से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से तुम्हारे पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होकर फिर समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है। मैंने सृष्टि की आरम्भिक अवस्था देखी है और उसके पश्चात् उसके उत्तरोत्तर विकास का अवलोकन किया है। मैंने देखा है कि हम पाँचों तत्वों से किस प्रकार तुम्हारा स्थूल स्वरूप और (अँगुली घुमा तारागणों की ओर सङ्केत कर) तुमसे न जाने कितने गुने बड़े आकार के ये तुम्हारे बन्धुगण, अगणित सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं। अन्य भूमण्डलों के

विकास का वृत्त न बता मैं तुम्हारी सृष्टि के विकास का ही तुम्हें स्मरण दिलाता हूँ, क्योंकि वही तुम्हारे अधिक समझ में आवेगा। क्या तुम भूल गयीं कि किस विधि से तुम्हारा दारूण ताप शनैः शनैः शीतल हुआ और किस क्रम से तुम्हारे सागर, पर्वत, नदियों आदि का निर्माण हुआ? क्या तुम्हें यह भी स्मरण नहीं है कि कैसे तुम्हारी उद्भिज सृष्टि की उत्पत्ति हुई और फिर तुम्हारे सागर से किस भाँति साकार और चेतन जीव सृष्टि का आरम्भ हुआ? तुम्हें याद होगा कि उस जीव सृष्टि में शनैः-शनैः कैसे मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह के स्वरूप बन तुम्हारी सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य का वामन रूप से प्रादुर्भाव होकर उस मनुष्य का किस विधि से मानसिक और शारीरिक विकास हुआ। मनुष्य ने सृष्टि की सब से प्रधान बात जो सृष्टि की एकता है, उस तक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। प्रिये, प्राणाधिके, सृष्टि की आदि और वर्तमान अवस्था के अन्तर का मुझे ज्ञान है। सारी सृष्टि उन्नति की ओर जा रही है, अवश्य उन्नति की ओर जा रही है।

पृथ्वी—तुमसे मैं थोड़ा ही कम जानती हूँ, प्रियतम, क्योंकि मेरी उत्पत्ति के पश्चात् ही अधिक विकास हुआ है। सूक्ष्म के विकास के लिए स्थूल ही तो साधन है। इसीलिए बिना मेरे विकास का कार्य आगे न बढ़ सकता था। मनुष्य की उत्पत्ति

तक अपनी सृष्टि के विकास को मैं भी स्वीकार करती हूँ। यह भी मैं अस्वीकार नहीं करती कि उत्पत्ति के पश्चात् कुछ काल तक मनुष्य ने भी अपनी उन्नति की थी।

आकाश—अभी भी मनुष्य अपनी उन्नति कर रहा है।

पृथ्वी—नहीं, अब उसकी अवनति आरम्भ हो गयी है।

आकाश—यह कैसे ?

पृथ्वी—देखो, प्राणेश, अन्य प्राणियों से मनुष्य में जो विशेषता है वह उसकी ज्ञान शक्ति ही है न ?

आकाश—अवश्य।

पृथ्वी—इस ज्ञान-शक्ति के द्वारा ही तो मनुष्य ने सृष्टि की सब से प्रधान बात—समस्त सृष्टि की एकता को जाना है।

आकाश—निस्सन्देह।

पृथ्वी—परन्तु इस एकता को जानने के पश्चात् जो यह आशा की जाती थी कि मनुष्य के हृदय में प्रेम का प्रादुर्भाव होगा, प्रेम-द्वारा वह समस्त सृष्टि को अपने समान ही मान, सभी को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करेगा, और इस प्रयत्न में उसे सच्चा सुख मिलेगा, वह आशा निराशा में परिणत हो गयी।

आकाश—यह कैसे ?

पृथ्वी—उसमें जो पाशविकता है, उसके कारण सामूहिक रूप से वह इस ज्ञान का भी अनुभव न कर सका और अनुभव न करने के कारण उसके कर्म कभी भी इस ज्ञान के अनुरूप

नहीं हुए। उसकी सभी कृतियाँ अपने पराये और असमानता के भावों से भरी हुई हैं। अन्य को सुख देने से उसे सुख का अनुभव होना तो दूर रहा, अपने लिए वह दूसरों को कष्ट दे रहा है। स्वार्थ वश सभी, अपने अपने साढ़े तीन हाथ के शरीरों की इन्द्रियों को तृप्त करने में लगे हुए हैं, आधिभौतिक सुखों में निमग्न है।

आकाश—किन्तु, प्रिये, तुमने अभी कहा ही कि विकास के लिए स्थूल अनिवार्य है, जिसे मैं भी मानता हूँ, अतः शरीर की रक्षा के लिए आधिभौतिक पदार्थ आवश्यक होते हैं।

पृथ्वी—इस आवश्यकता की पूर्ति उन्हें साधन मानकर करना एक बात है, परन्तु आधिभौतिक सुखों को ही साध्य मान उन्हीं के लिए लालायित रहना सर्वथा दूसरी बात है। आवश्यकता की पूर्ति के लिये जितनी आधिभौतिक वस्तुओं की आवश्यकता है वह दूसरे को कष्ट दिये बिना सहज में प्राप्त हो जाती हैं, परन्तु मनुष्य अपनी पाशविकता के कारण उससे कहीं अधिक के लिए इच्छुक रहता है। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह दूसरों को लूटने के लिए कटिबद्ध होता है। इसी स्वार्थ के कारण ही मेरी सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणियों का समाज भी लूट-मार और रक्तपात से भरा हुआ है। चूँकि मेरी सृष्टि में मनुष्य से उन्नत कोई प्राणी उत्पन्न नहीं हुआ, और चूँकि मनुष्य

अपने अब तक के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का अनुभव कर उसके अनुरूप कर्म न कर सका, अतः मेरा विश्वास है, मनुष्य और उसके संग मेरी सृष्टि की अवनति का आरम्भ हो गया है। तुम जानते ही हो कि या तो किसी वस्तु की उन्नति होगी, या अवनति। स्थिर अवस्था में कोई वस्तु रह ही नहीं सकती। यह तुम भी स्वीकार करते हो कि समस्त सृष्टि एक ही नियम से शासित होती है, अतः जो मेरी दशा है वही अन्य भूमण्डलों की होगी (कुछ रुककर) नहीं-नहीं, होगी क्या, है ही। तुमने ही कहा कि सभी भूमण्डल मेरे सदृश गान गाया करते हैं। हाँ, मैं यह नहीं कहती कि फिर उन्नति न होगी, क्योंकि अवनति की अन्तिम अवस्था नाश है। किसी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं हो सकता, अतः जिस वस्तु का नाश दिखता है किसी अन्य रूप से उसकी पुनः उत्पत्ति होती है, उत्पत्ति के पश्चात पुनः उत्थान और पतन होता है। इस प्रकार हर वस्तु प्रथक् एवं सामूहिक दोनों ही रूप से चक्र में घूम रही हैं। इस समय मनुष्य और उसके सङ्ग मेरी सृष्टि अवनति की ओर अग्रसर है।

आकाश—किन्तु, प्राणाधिके, हर वस्तु को प्रथक् रूप में देखने से ही उसका चक्रवत घूमना दिखता है। सामूहिक रूप में तो सृष्टि उन्नति की ओर ही अग्रसर है। मनुष्य जाति को

सामूहिक दृष्टि से देखा जाय तो मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य सृष्टि की एकता के अपने ज्ञान का अनुभव नहीं कर रहा है और उसके कर्म उसके ज्ञान के अनरूप नहीं हो रहे हैं। अन्य विकासों के अनुसार शनैः शनैः इस दृष्टि से भी उसका मानसिक विकास हो रहा है। आवश्यकता से अधिक आधिभौतिक सुखों की वासना जिस पाशविकता के कारण होती है उसका वह दमन कर रहा है, इसीलिए अपने आधिभौतिक सुखों के लिए अन्य को कष्ट देने की प्रवृत्ति मिट रही है, वरन अन्य को सुख देने में उसे सुख मिलने लगा है। आज जो अभूतपूर्व आधिभौतिक आविष्कार हो रहे हैं, विज्ञान की जो धूम मची हुई है, वह मनुष्य का संसार को सामूहिक रूप से सुख देने का प्रयत्न है।

पृथ्वी—कहाँ ? पहले यदि एक व्यक्ति अपनी आधिभौतिक वासनाओं की तृप्ति के लिए दूसरे व्यक्ति को कष्ट देता था तो आज एक समाज दूसरे समाज को, एक देश दूसरे देश को, कष्ट पहुँचा रहा है। इन सब आधिभौतिक और वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग संसार के सामूहिक सुख के लिए न होकर सामूहिक नाश के लिए हो रहा है।

आकाश—इन भावनाओं के परिवर्तन का प्रयत्न भी आरम्भ हो गया है। मनुष्य की दृष्टि जाति-प्रेम और देश-प्रेम से हटकर विश्व-प्रेम की ओर जा रही है। विश्व-बन्धुत्व के

भावों का प्रसार हो रहा है। इन भावों का पूर्ण साम्राज्य होने पर लूटमार और रक्तपात का अन्त हो जायगा, मनुष्य वर्ग के नाश का भय न रहेगा और वह अपने ज्ञान और विज्ञान की निश्चिन्तता से उन्नति कर सकेगा। पहले तुम्हारा समस्त मानव-समाज प्रेम के एक सूत्र में बँधेगा। फिर वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा अन्य भूमण्डलों में रहने वाली योनियों से वह सम्बन्ध स्थापित करेगा। मैं जानता हूँ कि अन्य भूमण्डलों में भी यही प्रयत्न चल रहा है। इस प्रकार समस्त भूमण्डलों की यह एकत्रित शक्ति अपने ज्ञान और विज्ञान-द्वारा एक दूसरे को सुख पहुँचा सच्चे तथा स्थायी आध्यात्मिक और आधिभौतिक सुख को प्राप्त कर सकेगी। मानव-समाज को प्रेम-सूत्र में बाँधने का सर्वप्रथम व्यापक प्रयत्न तुम्हारे संसार के भारत-देश में हुआ था। यह प्रयत्न मगध के कपिलवस्तु नगर के जिस राजकुमार सिद्धार्थ ने किया था तुम्हीं को तो उनके धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, धरिणी। तुम मनुष्य की जिस पाशविक वृत्ति को उसका नाशकारक दुर्गुण मानती हो उसे सिद्धार्थ ने जीत, सृष्टि की एकता का अनुभव कर, उसके अनरूप कर्मों द्वारा, मनुष्यों को जिस आचार प्रधान धर्म्म की मुख्यता बता, संसार की जिस प्रकार सेवा की थी, वह तुम्हें स्मरण है या नहीं? तुमको इस निराशामय कोहरे से बाहर निकालने

के लिए मेरी तो आज यह इच्छा होती है कि मैं एक बार तुम्हें तुम्हारी सृष्टि के इन महा प्रयत्नों के कुछ दृश्य दिखाऊँ।

पृथ्वी—दिखाओ, गगन, दिखाओ, परन्तु उसके पश्चात मैं भी जो कुछ दिखाऊँगी उसे तुम्हें भी देखना होगा।

आकाश— हाँ-हाँ, अवश्य देखूँगा, अवश्य।

[एकाएक अँधेरा हो जाता है। थोड़े ही देर में पुनः प्रकाश फैलता है। निकट ही आकाश और पृथ्वी पीछे की ओर मुख किये हुए खड़े हैं। उनकी पीठ और मुख का कुछ भाग दिखायी देता है। उनके सामने, जहाँ पहले क्षितिज दृष्टिगोचर होता था, वह स्थान अब शून्य है। आकाश और पृथ्वी एक-दूसरे को जो दृश्य दिखाते हैं वे इसी शून्य स्थान में दिखते हैं। इन दृश्यों को दिखाते हुए जब जब वे एक-दूसरे से बातचीत करने लगते हैं तब सामने के दृश्य लुप्त होकर वह स्थान पुनः शून्य हो जाता है।]

आकाश—शुद्धोधन नरेश ने अपने राजकुमार सिद्धार्थ के लिए तीनों प्रधान ऋतुओं में प्रथक्-प्रथक् विहार करने के लिए जिन नौ, सात और पाँच खण्ड के तीन विशाल प्रासादोंका कपिलवस्तु में निर्माण कराया था, उनका स्मरण दिलाने, पहले मैं तुम्हें उन्हीं को दिखाता हूँ।

[सामने दूर पर तीन पाषाण निर्मित विशाल प्रासाद दिखायी देते हैं। तीनों प्राचीन भारतीय शिल्प के उत्तम उदाहरण हैं।

उनके स्तम्भ, झरोखे, शिखर आदि सभी में विशालता ही विशालता दृष्टिगोचर होती है ।]

आकाश—रत्नगर्भा, इन प्रासादों की उस काल की वसुधा के समान संसार के किसी स्थान की वसुधा न थी, क्योंकि उस समय तुम्हारे संसार में भारत देश ही आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों ही दृष्टियों से सभ्यता के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर था। इन प्रासादों को भूली तो नहीं हो, प्रिये ?

पृथ्वी—कैसे भूलूँगी, व्योम, तुमने तो उन्हें ऊपर से देखा था, परन्तु मेरा और इनका तो सदा संसर्ग ही रहता था।

आकाश—(पृथ्वी के निकट जा उसके गले में हाथ डालकर) परन्तु, इतने पर भी सिद्धार्थ ने इन प्रचुर आधिभौतिक सुखों को ठोकर मार मानव-समाज के उपकार का जो महान प्रयत्न किया उसे भूल गई हो ?

पृथ्वी—नहीं, वह भी मुझे स्मरण है।

आकाश—स्मृति को और भी स्पष्ट करने के लिए सिद्धार्थ के उन विहारों का भी अवलोकन करो। (पृथ्वी के निकट से हट शून्य स्थान की ओर सङ्केत करते हुए) वसन्त के अन्त और ग्रीष्म के आरम्भ में यह राजकुमार का जल-विहार है—

[सामने नौ खण्ड वाला प्रासाद दिखता है। उसके संमुख पुष्पों से भरा हुआ एक विशाल उद्यान दृष्टिगोचर होता है, जिसके बीच में एक रमणीय सरोवर है, जो चाँदनी में चमक रहा है।

सरोवर के चारों ओर सुन्दर घाट बने हैं। घाटों पर शिखर-दार छतरियाँ हैं। सरोवर में गान युक्त जल-क्रीड़ा हो रही है, किन्तु क्रीड़ा करने वाले स्पष्ट नहीं दिख पड़ते, न गायन ही स्पष्ट सुन पड़ता है। धीरे-धीरे प्रासाद और उद्यान का बहुत-सा भाग छिपकर, सरोवर निकट से दिखने लगता है। सरोवर में सिद्धार्थ अनेक युवतियों के साथ जल-विहार कर रहे हैं। वे गौरवर्ण के अत्यन्त सुन्दर युवक हैं। वक्ष स्थल तक शरीर जल में डूबा हुआ है। कानों में कुण्डल, ग्रीवा में हार, भुजाओं में केयूर, हाथों में बलय हैं। सभी आभूषण विविध वर्ण के पुष्पों से बने हुए हैं। सिर खुला है जिस पर लम्बे बाल लहरा रहे हैं। उनके संग क्रीड़ा करने और गानेवाली युवतियाँ भी परम सुन्दरी हैं। उनके वस्त्र जल से गीले हो गये हैं। वे भी पुष्पों के आभूषण धारण किये हैं। गायन की ध्वनि भी स्पष्ट हो जाती है। बीच-बीच में कोकिल का कूजन सुन पड़ता है।]

आज शान्त हो सारा ताप,
शिशिर-सलिल सीकर धो डालें उर का गुरु उत्ताप,
तापित अङ्गों की तड़पन वह, वह अतृप्त-सी प्यास,
बुझे सदा को आज पूर्व ही मनो मुकुल में दास;
दिवस जनित श्रम थकित अङ्ग का अपगत हो सन्ताप,
आज शान्त हो सारा ताप।
गुरु निदाघ से प्रकृति सुन्दरी मुरझाई हो म्लान,

मधुर सुधाधर सुधा सींचता, निज मृदु कर से स्नेह निधान;
रसिक ! स्नेह-सिञ्चन से कर दो दूर विरह अभिशाप,
आज शान्त हो सारा ताप ।

आकाश—अब सिद्धार्थ कुमार के वर्षा-विलास का अवलोकन करो ।

[सामने-सात खण्ड वाला प्रासाद दिखता है । उसके सामने एक मनोहर हरा-भरा उद्यान लगा है, जिसके एक वृक्ष की एक शाखा में झूला पड़ा है जो सन्ध्या के सुनहरी प्रकाश में चमक रहा है । यह प्रकाश बीच-बीच में बादलों से ढँक जाता है । दो व्यक्ति झूला झूल रहे हैं और अनेक झूले के समीप खड़े हुए गा रहे हैं, किन्तु वे स्पष्ट दृष्टि-गोचर नहीं होते, न गायन ही स्पष्ट सुनाई पड़ता है । धीरे-धीरे प्रासाद और उद्यान का बहुत-सा भाग छिपकर जिस भाग में झूला पड़ा है, वह निकट से दिखने लगता है तथा गायन भी स्पष्ट रूप से सुन पड़ता है । सिद्धार्थ कुमार अपनी पत्नी राहुल देवी के संग झूल रहे हैं । राहुल देवी परम सुन्दर युवती हैं । सिद्धार्थ हारित कौशेय वस्त्र का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं; राहुल देवी भी हरित कौशेय वस्त्र की साड़ी पहने हैं । उसी रंग का वस्त्र राहुल देवी के वक्षस्थल पर बँधा है । दोनों हरित रत्नों के आभूषणों से सुसज्जित हैं, जो जगमगा रहे हैं । कई युवतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यों को बजा रही हैं; कई गा रही हैं । सभी परम सुन्दरी हैं और सभी हरित कौशेय वस्त्रों को धारण किये हैं तथा हरित मणियों के भूषण पहने हैं । इधर-उधर मयूर नृत्य कर बोल

रहे हैं। बीच बीच में पपीहे का शब्द सुन पड़ता है। कभी कभी मघ गर्जन होता है और बिजली चमकती है।]

मनभावन सखि! सावन आया,
मेरी हरी हृदय-डाली में प्रिय ने आ झूला डलवाया।
मन-मयूर हैं मुदित बजाते श्यामल मेघ गंभीर मृदंग;
रिमझिम बूँदों ने फैलाया हरियाली का जग में रंग,
सुख के साज सजे जीवन में विरह-गीत आ किसने गाया?
मनभावन सखि! सावन आया।
उफ़ना पड़ता था लय लय में उर का पीड़ामय उच्छ्वास,
नयन-सलिल से आर्द्र वेदना काँप रही थी ले निश्वास;
मम-मानस में वह स्वर-लहरी छोड़ गई क्यों धूमिल छाया?
मन-भावन सखि! सावन आया।

आकाश—अब राजकुमार के शरद्‌काल का विहार देखो।

[सामने पाँच खंड वाला प्रासाद दिखता है। धीरे धीरे वह प्रासाद छिपकर उसकी विशाल छत दिखाई देती है। छत ज्योत्स्ना से चमक रही है। उस पर श्वेत वस्त्र की बिछावन तानकर बिछाई गई है। छत के तीन ओर चमेली के पुष्पों की जाली बनी है। सामने की ओर हीरों से जड़ा 'शयन' (प्राचीन काल का एक प्रकार का सोफ़ा) रखा है। छत पर राहुल देवी के कंठ में भुजा डाले सिद्धार्थ टहल रहे हैं। दोनों श्वेत कौशेय वस्त्रों को धारण किये हैं और श्वेत हीरे मोतियों के आभूषण पहने हैं। आकाश में पूर्णचंद्र है।]

सिद्धार्थ—विवाह के पश्चात् यह पाँचवी शरद् पूर्णिमा है, प्रिये! तुम्हारे संग तीनों ऋतुओं में विहार करते हुए ये पाँच वर्ष पाँच क्षणों के समान व्यतीत हो गये।

राहुल देवी—और मुझे तो ये पाँच क्षणों से भी कम जान पड़ते हैं, आर्य पुत्र!

सिद्धार्थ—(चन्द्रमा की ओर देख फिर राहुल देवी के मुख की ओर देखते हुए) इस पूर्ण शरद्चंद्र से भी तुम्हारा मुख कहीं अधिक मनोहर है, प्राणेश्वरी! (मुख चूमते हैं।)

राहुल देवी—मेरे नाथ, नहीं नहीं, यह तो आप अतिशयोक्ति करते हैं। (सिद्धार्थ का मुख देखकर चंद्रमा को देख और फिर सिद्धार्थ का मुख देखते हुए) हाँ, यह मुख अवश्य ही चंद्रमा से कहीं अधिक मनोहर है। (कुछ ठहर) नहीं नहीं, इस मुख के लिए तो चंद्रमा की उपमा देना ही अनुचित है। (फिर चंद्रमा की ओर देख) कहाँ वह कलंकी चंद्र और (सिद्धार्थ का मुख देख) कहाँ यह निष्कलंक मुख!

सिद्धार्थ—(राहुल देवी का दृढ़ालिंगन करते हुए) संसार में हम लोगों से अधिक कौन सुखी है, हृदयेश्वरी?

राहुल देवी—मानती हूँ कि देवता भी हमारे सुख को देख हम से ईर्षा करते होंगे, आर्य-पुत्र!

सिद्धार्थ—यह जीवन इसी प्रकार तुम्हारे संग आनन्द करते करते बीत जाय, बस, सिद्धार्थ की संसार में केवल यही अभिलाषा है।

राहुल देवी—मेरी अभिलाषा तो इससे अधिक है, प्राणेश !

सिद्धार्थ—वह क्या देवि ?

राहुल देवी—यह नाथ, कि बारम्बार शरीर धार मैं आप ही को अपना पति पाऊँ ।

[सिद्धार्थ राहुल देवी का और भी दृढ़ालिंगन कर पुनः उनका मुख चूमते हैं । उसी समय वाद्य की ध्वनि सुन पड़ती है ।]

सिद्धार्थ—यह तो नर्तकियाँ आ रही हैं । क्यों प्राणाधिके, हमारे यहाँ का शरद-पूर्णिमा का नृत्य, वृज में शरद-पूर्णिमा को जो रास हुआ था, उससे क्या कम आनन्ददायक होता है ?

राहुल देवी—हमारे कोई भी विहार कृष्ण के विहार से कम आनंददायी नहीं होते, नाथ । क्या नृत्य, क्या गायन, क्या झूला, क्या जल-विहार...

[उसी समय कई युवतियाँ भिन्न भिन्न प्रकार के वाद्य बजाती हुई आती हैं । सिद्धार्थ और राहुल देवी शयन पर बैठते हैं । कई युवतियाँ भिन्न भिन्न प्रकार के हाव-भाव कर नृत्य आरम्भ करती हैं । नृत्य के संग ही गायन भी होता है । सभी युवतियाँ श्वेत कौशेय वस्त्र धारण किये हैं तथा हीरे-मोतियों के आभूषण पहने हैं । सारा श्वेत दृश्य चंद्रमा की धवल किरणों में चमक दृष्टि को चकाचौंध कर देता है ।]

करती विनय निशा बाला,

स्नेह सने मेरे अंतर में रखना हे शशि ! उजियाला ।

शरद-संपदा के अधिकारी,
अथवा क्षययुत कांति तुम्हारी,
त्यक्त भावना मुझसे सारी,
मम-कर में स्वागत माला,
करती विनय निशा बाला।
मेरे श्यामल जीवन-जग में,
स्नेहालोक दिखा पग पग में,
छली ! छोड़ छिपना मत मग में,
निठुर जलाना मत ज्वाला,
करती विनय निशा बाला*!

आकाश—तुम कहती हो मनुष्य अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर की इन्द्रियों को तृप्त करने में लगा हुआ है, परन्तु इस महान् विलासों को सिद्धार्थ ने किस प्रकार त्यागा यह तुम भूल गई। इन विलासों से सिद्धार्थ को जिस प्रकार वैराग्य हुआ उसका भी अवलोकन करो।

[सामने एक वन-मार्ग दिखाई देता है जिस पर डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणें पड़ रही हैं। मार्ग पर दूर से रथ आता हुआ दृष्टि-गोचर होता है। निकट आने पर ज्ञात होता है कि रथ में चार दीर्घकाय श्वेत रंग के सुन्दर अश्व जुते हुए हैं। रथ पर स्वर्ण लगा है और उस पर भिन्न-भिन्न वर्णों के रत्न जड़े हैं। रथ में पीत कौशेय वस्त्र धारण किये सिद्धार्थ विराजमान हैं। भिन्न-भिन्न रंगों के रत्नों से जग-

मगाते हुए आभूषण उनके अंग-प्रत्यंगों की दीप्ति बढ़ा रहे हैं। सिर पर रत्न जटित देदीप्यमान मुकुट लगा हुआ है। रथ को एक युवक सारथी हाँक रहा है। उसके वस्त्र भी पीले रंग के हैं और वह सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित है। रथ के कुछ और आगे बढ़ने पर एक ओर से एक अत्यंत वृद्ध मनुष्य लकड़ी टेकते हुए आता है।]

सिद्धार्थ—(वृद्ध को देख सारथी से) छन्दक! यह कौन है? इसका तो बड़ा विचित्र आकार है? सारा मांस सूखकर त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। सिर के केश श्वेत हो गये हैं। नेत्र धँस गये हैं और एक भी दाँत दृष्टिगोचर नहीं होता। हाथ में लकड़ी के होते हुए भी यह काँपता हुआ चल रहा है। इसकी यह दशा इसके किसी कौटुम्बिक दोष के कारण हुई है अथवा इसकी वृतियों ने ही इसे ऐसा बना दिया है?

छन्दक—आर्य, इसमें इसके कुटुंब या इसका कोई दोष नहीं है। वृद्धावस्था ही इसकी इस दशा का कारण है।

सिद्धार्थ—तो क्या वृद्धावस्था में प्रत्येक मनुष्य की यही दशा होती है?

छन्दक—यही प्राकृतिक नियम है, देव।

[सिद्धार्थ लम्बी साँस लेता है। रथ आगे बढ़ता है। कुछ और आगे बढ़ने पर वृत्त के नीचे पड़ा हुआ एक रोगी दिखता है।]

सिद्धार्थ—(रोगी को देख छन्दक से) छन्दक, यह कौन पड़ा है?

अरे ! इसके शरीर में तो अस्थिमात्र शेष हैं ! यह तो साँस तक बड़ी कठिनाई से ले सकता है।

छन्दक—यह रोग-ग्रसित है आर्य ! कुछ ही क्षणों में इसकी मृत्यु हो जायगी।

सिद्धार्थ—तो क्या मृत्यु के पूर्व सबकी यही अवस्था होती है ?

छन्दक—क्या कहूँ देव, प्राकृतिक नियम ही ऐसा है ?

सिद्धार्थ—(लम्बी साँस लेकर) ओह !

[रथ और आगे बढ़ती है। अरथी पर एक मृतक शरीर पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। उसके चारों ओर अनेक मनुष्य रो रहे हैं, अनेक छाती पीट रहे हैं, अनेक पछाड़ें खा-खाकर गिर रहे हैं, अनेक अपने बालों को नोंच रहे हैं, और अनेक अपने सिरों पर धूल डाल रहे हैं। कोलाहल मचा हुआ है।]

सिद्धार्थ—(इस दृश्य को देख छन्दक से) छन्दक, यह कैसा करुण दृश्य है ?

छन्दक—किसी की मृत्यु हो गई है, देव, उसका शरीर अरथी पर ले जाया जा रहा है। उसके बंधु-बांधव शोक से विलाप कर रहे हैं।

सिद्धार्थ—(दीर्घ निश्वास लेकर) हा ! छन्दक, धिक्कार है इस यौवन को जिसका वृद्धावस्था से नाश होता है, धिक्कार है इस आरोग्यता को जिसका रोग से नाश होता है, धिक्कार है इस जीवन को जिसका अल्पकाल ही में मृत्यु से नाश हो जाता

है। क्या सृष्टि में ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु को सदा के लिए बंदी बनाया जा सके। छन्दक, शीघ्र ही प्रासाद की ओर चलो, मैं इस उपाय का चिंतन करूँगा।

[रथ आगे बढ़ता है। कुछ आगे बढ़ने पर सामने से एक संन्यासी आता दिखाई देता है।]

सिद्धार्थ —(संन्यासी को देख छन्दक से) छन्दक, यह कौन है ?

छन्दक-- यह परिव्रजित है, आर्य।

सिद्धार्थ—यह क्या करता है ?

छन्दक—इसने समस्त विषय-भोगों एवं उनकी इच्छाओं को जीत निज को लोकोपकार में लगा दिया है।

सिद्धार्थ—(प्रसन्न होकर) यही जीवन श्रेयस्कर है, छन्दक।

[छन्दक कोई उत्तर नहीं देता। रथ आगे बढ़ता है। दृश्य परिवर्तन हो एक प्रासाद का महाद्वार दीख पड़ता है जिस पर कवच पहने हुए आयुधों से सज्जित अनेकप्रहरी घूम रहे हैं। सिद्धार्थ का रथ आता है।]

प्रधान प्रहरी—(रथ देख, आगे बढ़, सिद्धार्थ को अभिवादन करते हुए) बधाई है, आर्य, बधाई है। श्रीमती पट्टमहिषी राहुल देवी ने पुत्र प्रसव किया है।

सिद्धार्थ—(लम्बी साँस ले छन्दक से) छन्दक, यह नवीन बंधन उत्पन्न हुआ है।

[छन्दक फिर भी कोई उत्तर नहीं देता। रथ महाद्वार के भीतर प्रवेश करता है।]

आकाश—अब देखो, वसुंधरा, सिद्धार्थ कुमार ने किस प्रकार वैभवों का त्याग किया।

[सामने प्रासाद का एक विशाल कक्ष दिखाई देता है, जो सुगंधित तैल-दीपों से प्रकाशित है। कक्ष की छत स्थूल, ऊँचे और पाषाण-स्तंभों पर खड़ी है। स्तंभों के नीचे गोल कमलाकार चौकियाँ हैं और ऊपर गजशुंड के समान टोड़ियाँ। तीन ओर भित्ति है। स्तंभों पर खुदाव का काम है। छत और भित्ति सुन्दर रंगों से रँगी हैं। दिवारों पर बेलें बनी हैं जिसमें स्थान-स्थान पर रत्न जड़े हुए हैं। भित्ति के बीच में यत्र-तत्र मनोहर चित्र बने हैं। तीनों ओर की भित्ति में तीन द्वार हैं जिनकी चंदन की चौखटों तथा कपाटों में खुदाव का काम है और वह श्वेत हाथी-दाँत से सुशोभित है कक्ष की पृथ्वी पर फूलदार वस्त्र की बिछावन बिछी है और उस पर सुवर्ण के रत्न जटित पायों का सुन्दर पलँग है। पलँग पर पुष्प-शैया है और उन पर सिद्धार्थ निद्रा-मग्न हैं। पलँग के चारों ओर बिछावन पर तकियों के सहारे अनेक युवतियाँ लेटी हैं। सभी निद्रित हैं। किसी-किसी के अंगों पर के वस्त्र हट गये हैं। किसी के मुख पर कफ आ गया है, कोई दाँत कटकटा रही है और कोई बर्रा रही है। अनेक वाद्ययंत्र यत्र-तत्र पड़े हुए हैं। सिद्धार्थ एकाएक जागकर पलँग पर बैठ जाते हैं। हाथों से आँखों को मलते हुए इधर-उधर देखने लगते हैं। फिर कुछ देर तक तिरस्कार

और घृणापूर्ण दृष्टि से मुख को सिकोड़ते हुए निद्रित युवतियों को देखते हैं। एकाएक उठकर एक द्वार को, निकट जा, उसे खोलते हैं ?]

सिद्धार्थ—यहाँ कौन है ?

[बाहर से 'मैं छन्दक हूँ, आर्य।' इस प्रकार का शब्द आता है और छन्दक उसी द्वार से कक्ष में प्रवेश करता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है, फिर धीरे-धीरे सिद्धार्थ छन्दक से कहते हैं।]

सिद्धार्थ—(युवतियों की ओर संकेत कर) देखते हो, छन्दक, यह वीभत्स दृश्य ! वृद्ध, रुग्ण और मृतक अवस्था में ही क्यों, अचेतावस्था में भी मनुष्य की कैसी दशा हो जाती है, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। बिम्बाफल और प्रवाल के समान अधरों के जिस दुर्लभ अधरामृत को पान करने के लिए मनुष्य ऐसा मोहान्ध हो जाता है कि उसे भूत, भविष्य और वर्त्तमान किसी का ज्ञान नहीं रहता, देखो, वही इस समय इन युवतियों के अधरों से किस प्रचुरता और वीभत्सता से बह रहा है। कुंदकली और मुक्ताओं के सदृश जिस दंतावली की मुसकान को निरखने में अपनी समस्त सुध-बुध भूल मनुष्य विक्षिप्तवत हो जाता है, सुनो, उन्हीं दाँतों की यह भीषण कटकटाहट। जिनके कण्ठ से कोकिल के कूजन का-सा मधुर गान निकलता है और मनुष्य को मदोन्मत्त कर देता है, सुन लो उन्हीं की यह बर्राहट ! आह ! छन्दक, मैंने इन अनित्य और क्षणिक सुखों को भोगने

में अपना न जाने कितना अमूल्य समय और शक्ति का व्यय कर डाला है। बस छन्दक, बस अब और नहीं, अब इस बंधन में, मैं क्षणमात्र भी नहीं रह सकता। मैं आज ही महा-निष्क्रमण करना चाहता हूँ। विना किसी को जताये, गुप्त रूप से तत्काल मेरा अश्व प्रस्तुत करो।

छन्दक—(हाथ जोड़कर) आर्य, मैं तो आपका दास हूँ, जो आपकी आज्ञा होगी वही करूँगा, किन्तु...(रुक जाता है।)

सिद्धार्थ—मेरे आज्ञा-पालन में किन्तु-परन्तु छन्दक ?

छन्दक—देव, आज पर्यन्त आपके आज्ञा-पालन में कभी भी मैंने किन्तु-परन्तु का उपयोग नहीं किया। जब कभी भी जो आज्ञा आपने की उसका तत्क्षण पालन किया। आज संध्या को वायु-सेवन के समय से ही आपकी मानसिक अवस्था में जो परिवर्तन हो रहा है उसे मैंने भलीभाँति देखा है। इतने पर अब तक मैंने इसीलिए कुछ निवेदन नहीं किया कि मेरा अनुमान था कि यह परिवर्तन क्षणिक है। इस परिवर्तन में पुनः परिवर्तन होगा, परन्तु अब जब आप मुझे सब कुछ छोड़कर प्रयाण करने के लिए अश्व प्रस्तुत करने की आज्ञा दे रहे हैं तव तो, आर्य, सचमुच ही मुझसे कुछ कहे विना नहीं रहा जाता।

सिद्धार्थ—कहो, तुम क्या कहना चाहते हो।

छन्दक—(कुछ रुककर दीर्घनिश्वास ले) जन्म के पश्चात् आपका

जिस प्रकार लालन-पालन हुआ है, जिस प्रकार के विलासों को भोगते हुए आपने अब तक जीवन व्यतीत किया है उस, और जिस प्रकार का जीवन अब आप ग्रहण करना चाहते हैं, उसमें कितना महान अंतर होगा, आप परिव्रजित के कठिन व्रतों को किस प्रकार सहन कर सकेंगे, यह आपका अत्यंत मृदु और कोमल शरीर उस कठिनतम कष्ट को कैसे सहेगा, यह सब आपने विचारा है ? आपके वियोग से महाराज शुद्धोधन की क्या दशा होगी, पट्टमहिषी राहुल देवी तथा अन्य महिषियाँ गोपादेवी आदि की क्या अवस्था होगी, आज ही जिनका जन्म हुआ है उन आपके राजकुमार...

सिद्धार्थ—(बीच ही में) छन्दक, मैंने यह सब सोच लिया है। आज संध्या से मानसिक परिवर्तन का चाहे तुमने अवलोकन कर लिया हो, किन्तु जो भीषण युद्ध मेरे हृदय में मचा हुआ था उसका अनुमान तुम्हें नहीं हो सकता । एक ओर अब तक भोगे हुए विलासों की स्मृतियाँ तथा पिता, पत्नी आदि का प्रेम और दूसरी ओर इन सभी की अनित्यता इस महायुद्ध की दो महान् सेनाएँ थीं, किन्तु, छन्दक, अंत में प्रथम सेना पर दूसरी सेना की विजय हुई। तुम पूछते हो मैं परिव्रजित का कठिनतम जीवन कैसे सहूँगा और कैसे मेरे पिता और पत्नी आदि मेरे वियोग को सहेंगे ?

छन्दक—अवश्य, देव।

सिद्धार्थ—मनुष्य सब कुछ सह सकने की शक्ति रखता है, छन्दक, इसका मुझे आरम्भ से ही विश्वास रहा है। मैं अपने दृढ़ निश्चय के कारण परिव्रजित के कठिन जीवन को सह लूँगा और पिता-पत्नी आदि अन्य कोई उपाय न देख मेरे वियोग को सह लेंगे। फिर, मेरा और पिता-पत्नी आदि का यह कष्ट अस्थायी होगा, स्थायी नहीं।

छन्दक—यह किस प्रकार, आर्य ?

सिद्धार्थ—मुझे विश्वास है कि मैं स्थायी सुख-प्राप्ति का उपाय ढूंढ़ निकालूँगा। जो आधिभौतिक सुख अभी मैं भोग रहा हूँ और संसार भोग रहा है वे स्थायी नहीं हैं। मैं तो ऐसा मार्ग ढूंढ़ूँगा जिससे मुझे और संसार को स्थायी सुख प्राप्त हो। उस मार्ग की प्राप्ति के पश्चात् मेरे कठिन जीवन का दुःख और मेरे वियोग के कारण पिता-पत्नी आदि का क्लेश कहाँ रह जायगा ? मैं अपने और समस्त संसार से कष्टों की निवृति कर दूँगा। हाँ, आरम्भ में कष्ट पाये बिना किसी को किसी भी महान् वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई।

छन्दक—किन्तु देव...

सिद्धार्थ—(बीच में) अब किन्तु-परन्तु नहीं छन्दक। जिसे मैंने केवल अपना साथी और अनुचर नहीं किन्तु अपना सखा और मित्र माना है, वही क्या मेरे इस महानुष्ठान में बाधक होगा ?

[छन्दक चुप रहता है। उसी समय कुछ युवतियाँ करवट आदि बदलती हैं।]

सिद्धार्थ—(छन्दक से और भी धीरे-धीरे) अब और वाद-विवाद नहीं, छन्दक। देखो, हमारे इस वार्तालाप से ये स्त्रियाँ जाग-सी रही हैं। यदि ये जाग गईं तो व्यर्थ को मेरे गमन में आपत्ति उपस्थित होगी। तुम मेरी प्रकृत्ति से भलीभाँति परिचित हो, जो मैंने निश्चय कर लिया है उसे कोई परिवर्तित नहीं कर सकता; फिर वृथा के लिए क्यों एक करुण दृश्य की रचना कराते हो। (छन्दक के कंधे को हाथ से थपथपाते हुए) जाओ, शीघ्र ही अश्व प्रस्तुत करो। मैं अभी नवजात पुत्र को एक बार अंक में ले, वस्त्र आदि पहनकर बाहर आता हूँ।

[सिद्धार्थ कक्ष की दूसरी ओर का द्वार खोल कक्ष के बाहर जाते हैं। छन्दक भी सिर नीचा किये हुए जिस द्वार से कक्ष में आया था उसी से धीरे-धीरे बाहर हो जाता है। दृश्य इसी कक्ष के सदृश एक अन्य कक्ष में परिवर्तित हो जाता है। उसमें जो पलँग बिछा हुआ है उस पर राहुल देवी निद्रामग्न हैं। निकट ही उनका पुत्र सोया हुआ है। पुत्र से मस्तक पर राहुल देवी का हाथ है। (सिद्धार्थ का प्रवेश।) वे शनैः-शनैः शैया के निकट आते हैं। कुछ देर तक एकटक पत्नी और पुत्र की ओर देखते हैं फिर दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं। उस समय उनके नेत्रों से दो बड़े-बड़े अश्रु-बिंदु टपक पड़ते हैं। नेत्रों को पोंछ,

झुककर वे पत्नी तथा पुत्र को देखते हैं। पुत्र को उठाने के लिए दोनों हाथ बढ़ाते हैं, पर एकाएक रुक जाते हैं। कुछ समय तक खड़े खड़े, चुपचाप पत्नी और पुत्र को देखते रहते हैं। कुछ देर दृष्टि पत्नी के मुख की ओर रहती है फिर पुत्र की ओर घूमती है और फिर पुत्र से हट पत्नी की ओर। अन्त में वे बिना पुत्र को गोद में लिए, शीघ्रता से कक्ष के बाहर निकल जाते हैं। दृश्य प्रासाद के बाहरी भाग में परिवर्तित हो जाता है। चाँदनी फैली हुई है। छन्दक एक दीर्घकाय श्वेत अश्व के साथ खड़ा है। सिद्धार्थ का प्रवेश। अब वे मुकुट आदि लगाये हुए हैं।]

सिद्धार्थ—(अश्व के निकट आ उस पर आरूढ़ होते हुए अश्व को संबोधन कर) तात कन्थक, आज रात्रि में तू मुझे तार दे; मैं तेरी सहायता से बुद्ध होकर समस्त संसार को तारूँगा। (छन्दक से) अच्छा, छन्दक, तुम से भी विदा लेता हूँ। तुमने मेरी अबतक जो सेवा की है और आज मेरे महानुष्ठान में जो सहायता पहुँचाई है उसके लिए मैं सदा तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। आशा है, अपने मार्ग का अनुसंधान कर मैं शीघ्र ही तुम से मिलूँगा।

छन्दक—(आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठ से) मैं आपसे पृथक रहूँ, यह असम्भव है, आर्य, मैं आपके संग चलूँगा, अवश्य चलूँगा।

सिद्धार्थ—किन्तु...

छन्दक—(जल्दी से) इसमें आप भी किन्तु-परन्तु न कर आये, नहीं तो मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा।

सिद्धार्थ—(कुछ सोचकर) अच्छा, चलो, छन्दक, कुछ दूर तक चले चलो।

छन्दक—कुछ दूर तक नहीं, देव, जहाँ तक आप जायँगे वहाँ तक, अवश्य वहाँ तक; और जहाँ जिस प्रकार आप रहेंगे वहीं उसी प्रकार मैं भी रहूँगा।

[सिद्धार्थ कोई उत्तर न दे अश्व को आगे बढ़ाते हैं। छन्दक अश्व की बाग पकड़ उसके संग दौड़ता हुआ जाता है। दृश्य परिवर्तित हो अनोमा (वर्तमान औमी) नदी का तीर दिखाई देता है। सघन वृक्ष हैं। प्रातःकाल का प्रकाश शनैः-शनैः फैल रहा है। अश्व पर सिद्धार्थ का प्रवेश। साथ में छन्दक भी है। नदी के निकट आकर सिद्धार्थ घोड़े से उतरते हैं और उसकी गर्दन को हथेली से प्रेम-पूर्वक थपथपाते हुए करते हैं।]

सिद्धार्थ—कन्थक, तूने मुझे तार ही दिया, मुझे विश्वास है कि मैं संसार को तारने की अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी करूँगा। तुझ पर बैठ मैं कैसे-कैसे सुंदर स्थानों को गया हूँ, अनेक बार मृगया की है, किन्तु अब तेरा संग ही छोड़ता हूँ।

[घोड़ा हिनहिनाता और अगले पैर के टाप से पृथ्वी खोदता है। उसकी आँखों से पानी बहता है।]

सिद्धार्थ—(छन्दक से) छन्दक, देखते हो, इसकी आँखों से भी

आँसू निकल रहे हैं। क्या यह मेरी बात समझता है कि सदा के लिए इसका और मेरा साथ छूट रहा है ?

[उसी समय घोड़ा लड़खड़ाकर गिर पडता है और तत्काल उसकी मृत्यु हो जाती है ।]

सिद्धार्थ—(आश्चर्य से) हैं, यह क्या, यह क्या छन्दक ! इस अश्व ने तो अपने प्राण ही दे दिये । इतना मोह ! इतना मोह !

[छन्दक के नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं । वह बोलने का प्रयत्न करता है, पर गला रुकने के कारण वह खखारकर रह जाता है । सिद्धार्थ घोड़े के मृत शरीर पर हाथ फेरते हैं । कुछ देर निस्तब्धता रहती है । फिर वे नदी के और भी निकट बढ़ पानी के पास बैठ जाते हैं । छन्दक भी उनके निकट जाकर खड़ा हो जाता है ।

सिद्धार्थ—छन्दक, इस अश्व ने मुझे बड़ी सहायता दी है। इसका अंतिम संस्कार भलीभाँति कर देना, और देखो, मैंने तुम्हें मार्ग भर समझाया है, अब तुम भी और आगे न चलो। संग आने का तुम्हारा हठ भी अब पूर्ण हो गया और अब मेरी आज्ञा का भी पालन करो। भृत्य का मुख्य कर्तव्य स्वामी का आज्ञा-पालन है। मोहवश कर्तव्यच्युत मत हो, छन्दक ! मैं तुमसे बहुत शीघ्र मिलूँगा, इसका विश्वास रक्खो। देखो, जो साधना मैं करना चाहता हूँ उसमें एकांत की आवश्यकता है। जिसके लिए मैंने समस्त राज-पाट, प्रासाद-उद्यान, वैभव-विलास, पिता-पत्नी आदि

को छोड़ा, उसमें बाधा-स्वरूप होना तो तुम न चाहोगे? मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम सराहनीय है, किन्तु तभी तक जब तक वह मोह में परिणत न होवे।

[छन्दक ज़ोर से रो पड़ता है]

सिद्धार्थ—धैर्य रखो, छन्दक, और इस विश्वास पर धैर्य रक्खो, कि मैं तुमसे बहुत शीघ्र मिलूँगा। (अपना मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, वलय आदि समस्त भूषणों को एक-एक कर उतारते और छन्दक को देते हुए) ये सब आभूषण भी ले जाओ, अन्य सब संगों के साथ मैं इनका संग भी छोड़ता हूँ। मेरे भावी जीवन में इनका कोई स्थान नहीं है।

[छन्दक कुछ न कह काँपते हुए हाथों से आभूषणों को ले लेता है।]

सिद्धार्थ—पिता, पत्नियों आदि सभी को सांत्वना देना और कहना कि आपके पुत्र और पति ने केवल अपने तारने का नहीं किन्तु संसार को तारने का संकल्प किया है। यथार्थ में तो मेरी यह कृति उनके शोक का कारण न होकर आनंद का कारण होना चाहिए; किन्तु मोह के कारण इस प्रकार की कृतियाँ प्राय: शोक का ही कारण होती हैं। मुझे विश्वास है, छन्दक, कि संसार के मोह के साथ ही उनके मोह का भी मैं शीघ्र ही नाश करूँगा।

[छन्दक के मुख से एक शब्द भी नहीं निकलता।]

सिद्धार्थ—(खंग निकाल अपने लम्बे केशों को काट नदी के प्रवाह में बहाते हुए) जाओ केशो, जाओ। इस शरीर में तुम मुझे सब से अधिक प्रिय थे। अनेक सुगंधित द्रव्यों का उपयोग कर मैं तुम्हें न जाने कितने समय तक और कितने बार सँवारा करता था। अब तुम्हारे संग का बन्धन भी मैं तोड़ देना चाहता हूँ।

आकाश—मेदिनी, महावैभव का परित्याग और सच्चे सुख को प्राप्त करने की इच्छा सिद्धार्थ को केवल अपने तारने के लिए नहीं किन्तु संसार को तारने के लिए हुई थी। उनके हृदय में अपने तारने का स्वार्थ भी न था। हाँ, संसार को तारने के पूर्व संसार किस प्रकार तारा जा सकता है इसे जानना आवश्यक था। इसी मार्ग की खोज के लिए सिद्धार्थ ने उस बेला में नेरंजना नदी के तट पर षट् वर्ष तक जो घोर तप किया वह तुम्हें अब स्मरण आ गया होगा। कहाँ महान विलासपूर्ण जीवन में पला हुआ उनका अत्यंत कोमल शरीर और कहाँ घोर तप ! कहाँ उनके ग्रीष्म, वर्षा और शरद के वे विविध प्रकार के विहार और कहाँ ग्रीष्म के प्रखर सूर्य, वर्षा की मूसलाधार वृष्टि और शरद् एवं हेमंत की कड़कड़ाती हुई शीत का शरीर पर ही सहन करना ! किन्तु संसार के दुखों की निवृत्ति के लिए उन्होंने सभी कुछ सहन किया। तुम्हें स्मरण होगा कि अंत में तो

उन्होंने भोजन करना भी छोड़ दिया था। वह सारा वृत्त भलीभाँति स्मरण दिलाने के लिए मैं तुम्हें बोधि वृक्ष के नीचे उनके तप का दृश्य दिखाता हूँ। षट् वर्ष के तप के पश्चात् उनकी कैसी दशा हो गई है। इसका अवलोकन करो। उनके निकट अन्य पाँच परिव्रजित भी उनकी सेवा में संलग्न हैं।

[सामने उस वेला (वर्तमान बोध गया) में नेरंजना (वर्तमान नेलाजन) नदी के किनारे बोधि वृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर सिद्धार्थ एक आसन से बैठे हुए ध्यान मग्न हैं। निकट ही पाँच संन्यासी बैठे हैं। प्रातःकाल के सूर्य से सारा दृश्य आलोकित है सिद्धार्थ का गौर वर्ण शरीर रुक्ष, श्याम और दुर्बल हो गया है। वे 'चीवर' (भिक्षुओं के वस्त्र) धारण किये हैं। सारा शरीर भूषणों से रहित है। कुछ देर पश्चात् सिद्धार्थ खड़े होकर चबूतरे पर टहलने लगते हैं। निर्बलता के कारण एकाएक गिर पड़ते और मूर्च्छित हो जाते हैं। पाँचों संन्यासी शीघ्रता से उन्हें सम्हालते और उनके मुख पर पानी छिड़क वस्त्र से हवा करते हैं। कुछ समय में उन्हें चेतना होती है। वे धीरे-धीरे उठकर इधर-उधर देखते हैं।]

एक संन्यासी—अब कैसा स्वास्थ्य है, आर्य ?

सिद्धार्थ—अच्छा है, किन्तु कौडिन्य, आज मुझे निश्चय हो गया है कि यह दुष्कर तप बुद्धत्व-प्राप्ति का मार्ग नहीं है।

कौडिन्य—फिर देव ?

सिद्धार्थ—अन्य किसी मार्ग को खोजना होगा। मैं आज से भोजन आदि पुनः आरम्भ करूँगा।

कौडिन्य—(आश्चर्य से) अच्छा !

[कौडिन्य और शेष चारों संन्यासी आश्चर्य से सिद्धार्थ की ओर देखते हैं।]

आकाश— इस प्रकार की तपस्या को त्याग ज्योंही सिद्धार्थ ने भोजनादि आरम्भ किया त्योंही उन्हें प्रपंची मान, और यह विचार कि छै वर्ष के घोर तप के पश्चात् भी जब यह बुद्ध न हो सके तब अब भोजनादि ग्रहण करने के पश्चात् क्या होंगे, वे पाँचों परिव्रजित, इन्हें छोड़कर ऋषि पतन चले गये थे यह तुम्हें स्मरण होगा, किन्तु इतने घोर तप के पश्चात् अपनी खोज में सफल न होने पर भी दृढ़प्रतिज्ञ सिद्धार्थ निराश न हुए, उनके संगियों के उन्हें त्याग देने पर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनन आरम्भ किया। अन्त में उसी बोधि वृक्ष के नीचे उन्हें जिस प्रकार सफलता मिली उसका भी अब तुम्हें स्मरण आ गया होगा। देखो, सिद्धार्थ बुद्ध होने के पश्चात् एक साधु संप्रदाय के प्रमुख से क्या कह रहे हैं।

[सामने फिर पूर्व का-सा दृश्य दिखाई देता है। बोधि वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ खड़े हुए हैं। इनके सामने एक संन्यासी खड़ा है।]

संन्यासी—तो आर्य, मनन और आचरण द्वारा आप बुद्ध हुए ?

सिद्धार्थ—हाँ साधु, मनन और आचरण द्वारा । अब मैं सब को पराजित करने वाला, साथ ही सब को जानने वाला हूँ। मैं अर्हत हूँ, बुद्ध हूँ, निर्वाण-प्राप्त हूँ। अपने को मैंने जान लिया है, अतः अब मैं अन्यों को उपदेश करने योग्य हो गया। स्वयं प्रकाश में रहने के कारण अब मैं अँधेरे लोक में प्रकाश की दुन्दुभि बजाऊँगा ।

आकाश—देखा प्रिये, बुद्ध पद की प्राप्ति के पश्चात् भी अँधेरे लोक में प्रकाश की दुन्दुभि बजाना बुद्धदेव का उद्देश है।

पृथ्वी—परन्तु वह दुन्दुभि कहाँ तक बज सकी ?

आकाश—वह भी देखो, वह सब भी तुम्हें दिखाता हूँ। पहले तो यही सुनो कि बुद्धदेव की दृष्टि से अँधेरे लोक में प्रकाश की दुन्दुभि बजाने का क्या अर्थ है। तुम्हें स्मरण आ गया होगा कि यह उन्होंने सर्वप्रथम ऋषि पतन जाकर उन्हीं पाँचों परिव्रजतों को सुनाया था जो इन्हें छोड़कर चले गये थे। उनका कथन उन्हीं के मुख से सुन लो।

[सामने ऋषि पतन (वर्तमान सारनाथ) में गंगा का तट दृष्टि-गोचर होता है। मध्याह्न का समय है। सूर्य के प्रकाश से गंगा का जल और चारोंओर का दृश्य चमक रहा है। गंगातट पर कुछ व्यक्ति बैठे हुए दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे जब ये व्यक्ति निकट से दिखाई पड़ते हैं तब ज्ञान होता है कि उनकी संख्या छः है। उनमें से एक बुद्ध दूसरे कौडिन्य तथा शेष चार कौडिन्य के साथ संन्यासी है।]

कौडिन्य—तो आपको बुद्ध पद प्राप्त हो गया ?

बुद्ध—हाँ, कौडिन्य, और अपने इस महान् अनुभव को सर्व-प्रथम तुम पाँचों मित्रों को बताकर फिर मैं उसका समस्त विश्व में प्रचारकर विश्व के दुखी निवासियों को सुखी करूँगा।

कौडिन्य—किन्तु आर्य, षट् वर्ष के घोर तप से जो वस्तु आप प्राप्त न कर सके उसे इतने अल्प काल में ही आपने क्यों कर प्राप्त कर लिया ?

बुद्ध—मनन और आचरण द्वारा।

कौडिन्य—यह कैसे देव ?

बुद्ध—देखो कौडिन्य, मैंने महान् विलासों को भी भोगा है और तुम सबों के सम्मुख घोर तप भी किया है। मनन-द्वारा मुझे निश्चय हो गया कि निर्वाण की प्राप्ति अर्थात अपने और सृष्टि के यथार्थ रहस्य को जान जीवन मुक्त की स्थायी सुखी अवस्था को पहुँचने के लिए विलासपूर्ण जीवन यदि मनुष्य को अंधा बना देता है तो घोर तप भी निरर्थक है।

कौडिन्य—किस प्रकार आर्य ?

बुद्ध—निर्वाण-प्राप्ति के लिए भी यह शरीर ही साधन है। तप से इसका क्षय होता है।

कौडिन्य—तब देव ?

बुद्ध—एक ऐसे मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, जिस

पर चलने से विषयेच्छा पर विजय प्राप्त हो जावे और शरीर की भी रक्षा हो; निर्वाण की प्राप्ति तभी हो सकती है।

कौडिन्य—आपको यह मार्ग मिल गया देव ?

बुद्ध—हाँ, मैंने इस मार्ग को ढूँढ़ लिया है। इसके आठ अंग हैं।

कौडिन्य—कौन से देव ?

बुद्ध—दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्म, जीविका, प्रयत्न, स्मृति और तल्लीनता की सम्यकता। देखो, कौडिन्य, मैंने मनन के पश्चात् जाना है कि चार सत्य हैं। पहला सत्य है, पाँच प्रकार के दु:ख अर्थात् जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय का संयोग और प्रिय का वियोग। दूसरा सत्य है, इन दु:खों का कारण तृष्णा। तीसरा सत्य है, तृष्णा का निवारण और चौथा सत्य है, तृष्णा के निवारण के लिए आचरण अर्थात् जिस प्रकार के मार्ग पर मैंने चलने को कहा, उसका अनुसरण।

कौडिन्य—आपके कथन का तो यह अर्थ होता है आर्य, कि ज्ञान और कर्म के उचित मिश्रण से ही निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

बुद्ध—अवश्य। 'धम्म' अर्थात् दर्शन और 'विनय' अर्थात् आचार अथवा दूसरे शब्दों में 'प्रज्ञा' और 'शील' अथवा तुम्हारे शब्दों में ज्ञान और कर्म के उचित मिश्रण से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है। मेरे कहे हुए ज्ञान के पश्चात् मेरे बनाये हुए अष्टांगिक मार्ग पर चलने और आठों प्रकार की सम्यकता

के कभी भी नष्ट न होने की अवस्था के प्राप्त होते ही मनुष्य 'अर्हत' और 'बुद्ध' हो जाता है क्योंकि उसके पश्चात् उसे सृष्टि की भिन्नता का आभास ही नहीं होता। जिस प्रकार समस्त समुद्र में एक ही स्वाद है उसी प्रकार समस्त सृष्टि में भी एकता ही विद्यमान है। पृथकत्व का निरीक्षण ही दुख उत्पन्न करता है। एकता के अनुभव के पश्चात् स्थूल दृष्टि से दिखने वाले जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय का संयोग और प्रिय का वियोग कहाँ रह जाता है ? कहाँ रह जाता है स्वार्थ ? निजता कहाँ रह जाती है और कहाँ उसकी पूर्ति की तृष्णा ?

कौडिन्य—किन्तु आठों प्रकार की सम्यकता के कभी नष्ट न होने की अवस्था तो बड़ी कठिन है।

बुद्ध—निस्संदेह बिना इसके, यह जानते हुए भी कि सृष्टि में एकता विद्यमान है, उस एकता का अनुभव नहीं हो सकता। किसी बात को जानना एक बात है और उसका अनुभव करना दूसरी। इस अनुभव के बिना निर्वाण पद की प्राप्ति नहीं हो सकती, किन्तु प्रयत्न से यह अवस्था सबको प्राप्त हो सकती है, चाहे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी हों, चाहे वे पुरुष हों, या स्त्री।

आकाश—तुम्हें स्मरण होगा, प्रियतमे, कि पहले-पहल कौडिन्य और उसके साथी चारों परिव्रजित बुद्धदेव के शिष्य हुए

यह भी तुम्हें स्मरण आ गया होगा कि शनैः शनैः बुद्ध के इस उपदेश को उस काल के राजा और रंक, धनी और निर्धन, सभी ने श्रद्धापूर्वक सुना और ग्रहण किया। उस पर चल सहस्त्रों और लाखों नर-नारी अपने व्यक्तिगत समस्त स्वार्थों को छोड़ भिक्षु-भिक्षुणी हो, समस्त सृष्टि को अपने समान जान उसकी सेवा में दत्तचित्त हो गये। बुद्धदेव के पिता, पत्नी, पुत्र और छन्दक भी उनके अनुयायी हुए। मृत्यु के पूर्व अस्सी वर्ष की अवस्था तक अर्थात् बुद्ध-पद प्राप्ति के पश्चात् लगभग पेंतालीस वर्ष बुद्धदेव ने भी स्वयं घूम-घूम कर अपने इस धर्म का उपदेश किया और स्वयं दीन-दुखियों की सेवा की। वे वर्षा के चार मास तक किसी एक स्थल पर निवास करते और आठ मासों तक भ्रमण करते रहते थे। यह देखो, प्रथम उपदेश के अनेक वर्षों के पश्चात् बुद्ध एक महती सभा में भाषण कर रहे हैं। इस सभा में नर-नारी, राजा-रंक, धनवान-निर्धन, गृहस्थ भिक्षु सभी उपस्थित हैं।

[सामने दूर पर एक बड़ी भारी सभा दृष्टिगोचर होती है। मनुष्यों का समुद्र दिखाई देता है। पुरुष, स्त्री तथा सभी वर्गों के व्यक्ति उपस्थित हैं। शनैः शनैः वह स्थान निकट से दिखने लगता है जहाँ व्यास पीठ पर विराजे हुए बुद्धदेव उपदेश कर रहे हैं। अब वे वृद्ध हो गये हैं सारा दृश्य डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से चमक रहा है।]

बुद्ध—चाहे कोई भिक्षु हो या गृहस्थ उसे हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, चुगली, कठोर बचन, व्यर्थ बकवाद, लोभ, द्रोह और मिथ्या सिद्धान्त ये दस प्रकार के 'विप्रतिसार' अर्थात् चित्त को मलिन करने वाली बातों को छोड़ सत्य धारण युक्त हो समस्त सृष्टि के प्रति प्रेम-भावना रख लोकोपकार में दत्तचित्त होना चाहिए।

['धन्य है', 'धन्य है', 'भगवान अर्हत की जय', 'भगवान बुद्ध की जय' इत्यादि शब्द होते हैं।]

बुद्ध—बन्धुओ, सद्भावनाओं में प्रेम का मुख्य स्थान है। जिस प्रकार तारिकाओं में कोई भी तारिका चन्द्रमा की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है उसी प्रकार सद्भावनाओं में कोई भी भावना प्रेम-भावना के सोलहवें भाग के तुल्य नहीं है। प्रेम अन्य समस्त सद्भावनाओं को उसी प्रकार अपने अन्तर्गत कर लेता है जिस प्रकार प्रातःकाल का प्रकाश समस्त तारिकाओं को, और वह हृदय के सारे अंधकार को नष्ट कर उसी प्रकार चमकने लगता है जिस प्रकार वर्षा के अंतिम मास में बादल को नष्ट कर सूर्य।

[पुनः जय जयकार होता है।]

आकाश—(पृथ्वी के निकट आ उसका आलिंगन करते हुए) हे बुद्धिमती इला, तुम्हारी ही सृष्टि में जो कुछ हुआ है उसे मेरे इस प्रकार स्मरण दिला देने पर भी क्या तुम कह सकती

हो कि मनुष्य ने सृष्टि की एकता के ज्ञान को पाकर उसका अनुभव नहीं किया और उसके कर्म इस ज्ञान के अनुरूप नहीं हुए ?

पृथ्वी—मैं तो अभी यही कहूँगी, तारापथ ?

आकाश—कैसे प्रिये ?

पृथ्वी—मैंने पहले ही कहा था कि सामूहिक रूप से मनुष्य ने इस ज्ञान का अनुभव नहीं किया और उसके कर्म इस ज्ञान के अनुरूप नहीं हैं। बुद्धदेव के पश्चात् उनके धर्म का क्या हुआ यह कदाचित् तुम भूल गये हो ?

आकाश—नहीं-नहीं, मुझे तो वह भी स्मरण है। सामूहिक रूप से तो यथार्थ में बुद्ध के पश्चात् ही बौद्धमत का प्रचार हुआ था। परन्तु तुम उसे भी भूल गई दिखती हो। जान पड़ता है, उसका स्मरण दिलाने के लिए तुम्हें वे दृश्य भी दिखाने होंगे ?

पृथ्वी—दिखालो, प्राणेश, जो कुछ तुम दिखाना चाहते हो, पहले वह सब दिखा लो; फिर मैं भी तुम्हें दिखाने वाली हूँ।

आकाश—उसे मैं अवश्य देखूँगा। (पृथ्वी के निकट से हट सामने की ओर संकेत कर) देखो प्रिये, अब बुद्धदेव के पश्चात् उन सम्राट् अशोक की सभा का अवलोकन करो जिन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर युद्ध को सदा के लिए त्याग दिया था और यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्ध द्वारा नहीं किन्तु सद्धर्म्म

द्वारा संसार को विजय करूँगा। जो सभा मैं तुम्हें दिखा रहा हूँ वह अशोक के बौद्धधर्म ग्रहण करने के एक युग अर्थात बारह वर्ष पश्चात् की है और युगपूर्ण होने पर वे सद्धर्म्म ग्रहण करने का उत्सव मना रहे हैं। इस सभा को देखकर संसार में उन्होंने बौद्धमत के प्रचार और प्रजा के उपकार के लिए जो कुछ किया था उस सब का तुम्हें स्मरण हो आयेगा।

[सामने सम्राट् अशोक का विशाल सभा-भवन दृष्टिगोचर होता है। यह भवन बौद्धकालिक शिल्प का उत्तम उदाहरण है। स्थूल और ऊँचे पाषाण स्तम्भों पर सभा भवन की छत है। स्तम्भों, उनकी चौकियों और टोडियों पर खुदाव का काम है। तीनों ओर की भित्ति और छत सुन्दर रंगों से रंगी हुई है जिनके किनारों की बेलों में रत्न प्रचुरता से जड़े हैं। भित्ति के मध्य में बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी अनेक चित्र बने हैं। सामने की ओर सुवर्ण के रत्न-जटित सिंहासन पर सम्राट् अशोक विराजमान हैं। वे प्रौढ़ावस्था के गौर वर्ण, ऊँचे-पूरे बलिष्ठ व्यक्ति हैं। पीले कौशेय वस्त्र का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं। मुकुट, कुंडल, हार, केयूर, वलय आदि सभी रत्न-जटित आभूषणों से उनके अंग देदीप्यमान हो रहे हैं। छत्र-वाहिका उनके मस्तक पर श्वेत छत्र लगाये हैं जिसमें मुक्ताओं के झालर लगी हुई है। दो चामर-वाहिकाएँ, सुवर्ण की रत्नजटित डाँड़ियों वाले सुरागाय की पुच्छ के श्वेत चामर तथा व्यजन-वाहिकाएँ सोने की रत्नजटित डाँड़ियों में

लगे हुए खस के पंखे डुला रही हैं। वाहिकाएँ गौरवर्ण की सुन्दर प्रौढ़ा स्त्रियाँ हैं। वे चमकदार रंगों के कौशेय वस्त्र पहने तथा सुवर्ण के रत्न-जटित आभूषण धारण किये हैं। सिंहासन के सामने अर्द्ध चन्द्राकार रूप में व्यवस्थित ढंग से सुवर्ण की रत्न-जटित आसनियों (प्राचीन काल की एक प्रकार की कुर्सियाँ) की अनेक पंक्तियाँ रखी हुई हैं, जिन पर सिंहासन की ओर मुख किये महामात्य (प्रधान मंत्री), महाबलाधिकृत (प्रधान सेनापति), छत्रपनरेश (माण्डलिक राजा), कुलपुत्र (सम्राट् के नातेदार), सामंतगण (राजकर्मचारी), संघस्थविर (भिक्षु-समुदायों के प्रधान) और भिक्षु-भिक्षुणी बैठे हैं। संघस्थविर और भिक्षु-भिक्षुणियों को छोड़ शेष सभी कौशेय वस्त्रों के उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं तथा रत्नों के मुकुट, कुंडल, हार, केयूर, वलय आदि भूषणों को पहने हैं। संघ-स्थविर और भिक्षु-भिक्षुणी अपने 'चीवर' (भिक्षुओं के विशेष प्रकार के वस्त्र) वस्त्रों में हैं। यत्र-तत्र अनेक प्रतिहारी खड़े है। मध्याह्न का समय है। सभा-भवन उत्सव के लिए पत्र-पुष्प की बन्दनवारों और कदली वृक्षों से सुशोभित है। धूप दानियों से सुगंधित धूम्र उड़ रहा है। नेपथ्य में पंच महावाद्य शंख, रम्मट, भेरी शृंग और जय घंट बज रहे हैं जिनकी धीमी ध्वनि आ रही है।]

अशोक—संघ-स्थविरो, भिक्खुणियों, भिक्खुगणों, छत्रप-नरेशों, कुल-पुत्रो और सामंतो, मेरे सद्धर्म्म ग्रहण करने को आज बारह वर्षों का एक युग पूर्ण होता है। इस एक युग में सद्धर्म्म

और संसार की जितनी सेवा हुई है उसी को स्मरण कर तथा भविष्य के लिए इसी सेवा का नया कार्य-क्रम बना हमें यह उत्सव मनाना चाहिए। उत्सव मनाने की मैं इससे अच्छी और कोई विधि नहीं मानता। सद्धर्म्म को ग्रहण करने के पश्चात् इस एक युग में मुझे जो आंतरिक आनंद प्राप्त हुआ है और सद्धर्म्म ग्रहण करने के तीन ही वर्ष पश्चात् से मैंने जिस निर्वाण सुख को भोगा है वह इसके पूर्व के जीवन में कभी न मिला था। कहाँ पहले का अहं-मन्यता पूर्ण मारकाट—मय जीवन, मेरे द्वारा मेरे प्रिय भ्राताओं तक का नीच लोमहर्षक वध, कलिंग के युद्ध का भीषण हत्याकाण्ड और कहाँ यह सेवामय अपूर्व शांत जीवन! बंधुगणो, मैं तो देखता हूँ कि इन बारह वर्षों में मैंने धर्म्म और प्रजा की सेवा कर जिस प्रकार संसार को विजय किया है वह युद्ध द्वारा अनेक जन्मों में भी सम्भव न था।

[सभा भवन में 'धन्य है', 'धन्य है', 'भगवान अर्हत की जय', 'भगवान बुद्ध की जय', 'भगवान तथातगत की जय', 'परम भट्टारक', परमेश्वर, राज राजेश्वर सम्राट् अशोक की जय', आदि शब्द होते हैं और उनकी प्रतिध्वनि होती है।]

अशोक—बंधुओ, इन बारह वर्षों में सद्धर्म्म की सेवा का जो सबसे प्रधान कार्य हुआ है वह परम पूज्यपाद गुरुदेव

योग्गलि पुत्ततिस्य संघ-स्थविर की अध्यक्षता में सद्धर्म्म के अठारहों निकायों का सम्मेलन है, जिसने धम्म-संबंधी समस्त मत-भेदों का निराकरण कर 'धम्म' की तृतीय संगति का निर्माण किया है। अब तक के सद्धर्म्म के प्रचार के लिये सबसे बड़ा सहायक सिद्ध हो रहा है। इस एकीकरण से सद्धर्म्म के प्रचार को केवल भारतवर्ष में ही सहायता नहीं पहुँच रही है, किन्तु इससे दूर देश-देशांतरों में सद्धर्म्म का प्रचार हो रहा है।

[पुनः 'धन्य है' 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

अशोक—(महामात्य से) महामात्य, अब मैं आपसे सद्धर्म्म आदि के विषय में कुछ प्रश्न पूछता हूँ, जिससे हमारे संघ स्थविरों तथा क्षत्रप-नरेशों आदि को जो आज दूर-दूर से इस उत्सव में सम्मिलित होने को पधारे हैं, सद्धर्म्म के प्रचार आदि के सम्बन्ध में सारा वृत्त ज्ञान हो जावे।

महामात्य—(खड़े होकर हाथ बाँधे हुए) जो आज्ञा परम-भट्टारक !

अशोक—देश के प्रधान-प्रधान स्थानों में चौरासी सहस्र योनियों के द्योतक चौरासी सहस्र स्तूपों के निर्माण की मैंने जो आज्ञा दी थी उनमें से कितनों का निर्माण हो चुका ?

महामात्य—आधों से कुछ अधिक का महाराज।

अशोक—और अनेक स्थानों पर जिन स्तंभों के बनाने की आज्ञा दी थी उनमें से कितने स्तंभों का निर्माण होना शेष है ?

महामात्य—जितने स्तंभों के निर्माण की आज्ञा हुई थी वे सभी बन चुके, परम-भट्टारक !

अशोक—वे इस प्रकार के द्रव्य से बने हैं न कि वर्षा आदि के प्रभाव से दीर्घकाल तक नष्ट होने से बच सकें ?

महामात्य—वैज्ञानिकों ने उनमें इसी प्रकार के द्रव्य का उपयोग किया है, महाराज, कि जबतक यह पृथ्वी विद्यमान रहेगी तबतक वे स्तंभ भी रक्षित रहेंगे।

अशोक—सभी स्तंभों का शिल्प भी एक-सा होगा ?

महामात्य—आज्ञानुसार सभी एक प्रकार के शिल्प के ही हैं। नीचे पृथ्वी का द्योतक कमल है और ऊपर चार सत्यों के द्योतक चार सिंह। बीच में संसार-चक्र से निकलते हुए भगवान वृषभ के रूप में अंकित हैं।

अशोक—ठीक, और सभी स्तूपों एवं स्तंभों पर भगवान के उपदेश तथा मेरे नम्र निवेदन उसी प्रकार स्पष्ट रूप से लिखे गये हैं न जिस प्रकार आरंभ में बनाये गये स्तूपों और स्तंभों पर मैंने अपने सम्मुख लिखवाये थे ?

महामात्य—हाँ, परम-भट्टारक, उसी प्रकार।

अशोक—बौद्ध भिख्खुओं और भिख्खुनियों के लिए चौरासी सहस्र चैलों से मंडित चौरासी सहस्र विहार बनने की आज्ञा थी उनका भी निर्माण हो चुका ?

महामात्य—हाँ, महाराज, किन्तु भिख्खुओं और भिख्खुनियों की

बढ़ती हुई संख्या के कारण इन चौरासी सहस्र विहारों में भी नित्य ही परिवर्द्धन का कार्य चला करता है।

अशोक--(कुछ ठहरकर) इन बारह वर्षों में, राज्य में सद्धर्म्म के प्रचार एवं प्रजा की सेवा के और क्या-क्या कार्य हुए, उनका भी आप संक्षेप से वर्णन कर दें, जिससे सबको उनकी भी सूचना हो जावे।

महामात्य—जो आज्ञा। (सभासदों की ओर लक्ष्य कर) महानुभावो, राज्य में हर प्रकार की हिंसा का सर्वथा निषेध कर दिया गया है।

['धन्य है', 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

महामात्य—स्तूपों और स्तंभों के शिला लेखों के अतिरिक्त सद्धर्म्म के प्रचारार्थ इस देश तथा यवनक, वाह्लीक, मिश्र, ताम्रवर्णी, सुवर्ण भूमि आदि अनेक विदेशों में उपदेशकों का लगातार भ्रमण हो रहा है।

[फिर 'धन्य है', 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

महामात्य--प्रजा में शिक्षा की प्रगति के लिए पवित्र नालंदा के विश्व-विद्यालय की बहुत वृद्धि की गई है। स्थान-स्थान पर और भी विद्यालयों का निर्माण हुआ है। स्त्री-शिक्षा की नवीन व्यवस्था हुई है।

[फिर 'धन्य है', 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

महामात्य—रोगियों की चिकित्सा के लिए अनेक नवीन

चिकित्सालयों का उद्‌घाटन हुआ है, वैज्ञानिक लोग चिकित्सा के नवीन उपायों की खोज कर रहे हैं और जड़ी-बूटियों के बड़े-बड़े उद्यान लगाये गये हैं।

[पुनः 'धन्य है', 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

महामात्य—प्रजा के सुख के लिए अनेक उद्यान, सरोवर, कूप आदि का निर्माण कराया गया है। यात्रा के मार्ग सुगम बना लिये गये हैं और मार्गों में स्थान-स्थान पर विश्रामगृहों का निर्माण हुआ है।

[पुनः 'धन्य है', 'धन्य है' इत्यादि शब्द होते हैं।]

महामात्य—संक्षेप में (अशोक की ओर लक्ष्य कर) परम-भट्टारक, आपके अत्यंत सरल जीवन ग्रहण कर लेने तथा युद्धों के न होने से केवल रक्षा के लिये सेना रखने और उसका व्यय अत्यंत घट जाने के कारण प्रजा से जो धन कर के स्वरूप में मिलता है वह सभी अब सद्धर्म्म के प्रचार और प्रजा की सेवा में ही व्यय हो रहा है।

[महामात्य बैठ जाता है। 'भगवान् अर्हत की जय,' 'भगवान् बुद्ध की जय', 'भगवान् तथागत की जय,' 'परमभट्टारक परमेश्वर राज-राजेश्वर सम्राट् अशोक की जय' शब्द होते हैं।]

महाप्रतिहार—[बाहर से सभाभवन में आनंद कर] जय हो परम-भट्टारक। यवनक, वाल्हीक, मिश्र, ताम्रपर्णी, सुवर्ण भूमि आदि अनेक विदेशों के दूत अनेक प्रकार के उपकार लेकर

इस उत्सव में सम्मिलित होने को पधारे हैं। उनको संग लिए गुरुदेव सभाभवन में पधार रहे हैं।

[सम्राट् के संग समस्त सभासद उठकर खड़े हो जाते हैं। मोग्गलिपुत्त के संग यूनान, मिश्र, बलख, लंका और बर्मा के दूत अपने-अपने देश की वेश-भूषा में आते हैं। यूनान का दूत गौरवर्ण है। वह ऊपर के अंग में एक युस्त्र सिला हुआ वस्त्र पहने है जो गले से जांघों तक लंबा है। किन्तु इसमें बाँहें न होने से दोनों भुजाएँ खुली हैं। कमर से पैरों तक वह धोती के सदृश बिना सिला वस्त्र धारण किये है। इन दो वस्त्रों के अतिरिक्त उत्तरीय के समान वह एक वस्त्र और लिए हुए है जो बायें कंधों से नीचे झूल रहा है, तथा दाहनी भुजा के नीचे से शरीर पर लपटा हुआ है। तीनों वस्त्रों का रंग क्रमशः पीला, नीला और लाल है। सिर पर उसके सुनहरे मुकुट गले में अनेक आभूषण तथा अँगुलियों में अँगूठियाँ हैं। मिश्र देश का दूत साँवले रंग का है। उसके शरीर पर पीले रंग का सिला हुआ वस्त्र है जो घुटने तक लंबा है। बायाँ कंधा और बायीं भुजा ढकी हुई है परन्तु दाहना कंधा और दाहनी भुजा खुली है। कमर से पैर तक वह श्वेत रंग की धोती के समान वस्त्र धारण किये है और सिर पर छोटा-सा साफा बाँधे है। वह भी गले में अनेक आभूषण और अँगुलियों में अँगूठियाँ पहने हुए है। इसके वस्त्र पतले सूत के हैं। बलख का दूत गेहुँएँ रंग का है। वह ऊपर के अंग में गले से घुटने तक लंबा बाहों वाला ढीला चोग़ा तथा कमर से पैर तक ढीला पाजामा पहने है। उसके वस्त्र

रेशम के हैं और क्रमशः केशरी और हरे रंग के हैं। सिर पर वह लाल रंग की गोल टोपी लगाये है जिसमें कलगी है। वह गले में अनेक आभूषण और अँगुलियों में अँगूठियाँ धारण किये है। लंका और बर्मा के दूतों की वेषभूषा भारतीयों के सदृश है। भोग्गलि पुत्त का भिक्षुओं के समान वेश है वे प्रौढ़ावस्था के मनुष्य हैं। इन दूतों के साथ अनेक दास हैं जिनकी वेशभूषा भी इन्हीं के समान हैं। ये दास भिन्न भिन्न प्रकार के उपहारों के थाल लिए हुए हैं अशोक आगे बढ़कर भाग्गलिपुत्र को प्रणाम करते हैं। शेष सभासद भी प्रणाम करते हैं। भोग्गलिपुत्र आशीर्वाद देते हैं। भोग्गलिपुत्त विदेशों के दूतों का सम्राट् से परिचय कराते हैं। वे इन सम्राट् का अभिवादन करते हैं। सम्राट् अभिवादन का उत्तर दे उनका स्वागत करते हैं। भोग्गलि-पुत्त के संग सम्राट् सिंहासन पर बैठते हैं और विदेशी दूत महामान्य के निकट की आसनियों पर। उपहार लाने वाले दास उपहारों सहित सभाभवन में एक ओर खड़े हो जाते हैं।]।

भोग्गलिपुत्त—(अशोक से) वत्स, तुम्हारे आज के उत्सव में सम्मलित होने के लिए संसार के भिन्न भिन्न देशों के ये इन आज कई दिनों से पाटलिपुत्र में आ रहे थे। ये विहार में ही ठहरे रहें और इनकी इच्छा की कि ये आज तुम्हारे सम्मुख उपस्थित किये जायँ, अतः इनकी इच्छानुसार मैं आज ही इन्हें तुम्हारे समीप लाया हूँ। तुम्हारे सम्मानार्थ उपहारों-सहित भिन्न-भिन्न देशों से ये इन वहाँ की धम्म

संस्थाओं और राजसत्ता द्वारा भेजे गये हैं। सद्धर्म्म को ग्रहण कर अशोक, केवल तुम ही सच्चे 'अशोक' नहीं हुए हो किन्तु तुमने समस्त संसार को 'अशोक' करना आरम्भ कर दिया है। सारे संसार में सद्धर्म्म विद्युत वन फैल रहा है और सभी उसे ग्रहण कर शोक से निवृत हो रहे हैं। इस प्रकार तुमने समस्त संसार पर अद्वितीय विजय प्राप्त की है। आज तुम्हें समस्त संसार श्रद्धा और प्रेम की दृष्टि से देखता है। तुम अन्य देशों की आधिभौतिक संपत्ति के सम्राट् नहीं, किन्तु उन देशों के निवासियों के हृदय-सम्राट् हो जो अस्थायी आधिभौतिक सम्पत्ति के अस्थायी स्वामित्व की अपेक्षा कहीं महान और स्थायी स्वामित्व है। संसार में किस राजा ने आज पर्यंत इस प्रकार की विजय प्राप्त की है ? और किसने इस प्रकार का सम्मान पाया है ?

अशोक—(सिर झुकाकर) यह सब भगवान् बुद्ध और आपकी कृपा है, गुरुदेव !

['भगवान् अर्हत की जय', 'भगवान् बुद्ध की जय', 'भगवान् तथागत की जय, 'संघ स्थविर गुरुदेव योगपुत्र लिगस्य की जय', 'परम-भट्टारक परमेश्वर राजराजेश्वर सम्राट् अशोक की जय', शब्द होते हैं।]

आकाश—सम्राट् अशोक के पश्चात् अनेक भारतीय सम्राटों और राजाओं ने आधिभौतिक सुखों को भोगते हुए भी बौद्ध-मत का प्रचार एवं प्रजा को सुखी करने के जो कार्य

किये हैं वे अब तुम्हें स्मरण आ गये होंगे। इनके जीवन वृत्तों से यह सिद्ध हो जाता है कि आधिभौतिक सुखों को भोगते हुए भी मनुष्य अपने कर्मों को अपने सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के अनुरूप बना सकता है। इन सम्राटों और राजाओं के इन महान् प्रयत्नों के अनेक चिन्ह आज भी संसार के कोने-कोने में विद्यमान हैं। तुम्हारे पर्वत और समुद्र तक इन चिह्नों से विभूषित हैं। क्या इन्हें दिखाकर इनका भी तुम्हें स्मरण दिलाना होगा? तुम्हारी अगणित वस्तुओं में कदाचित् तुम इन्हें भी भूल गई हो। प्रिये, यह देखो, ये तुमने भारत देश की प्रसिद्ध अजन्ता (Ajanta) की गुफाएँ हैं—

[सामने दूर पर अजन्ता की गुफाओं का दृश्य दिखाई देता है। धीरे-धीरे गुफाएँ निकट से दिखने लगती हैं। पहले उनका बाहरी भाग दिखता है, फिर उनके भीतरी भाग और चित्र आदि दिखाई देते हैं।]

आकाश—अब समुद्र में घरापुरी (Gharapuri) की गुफाओं को देखो—

[सामने समुद्र में दूर पर एलीफेण्टा की गुफाओं का दृश्य दिखता है। शनैः-शनैः गुफ़ाएँ निकट से दिखने लगती हैं। पहले उनका बाहरी भाग दिखता है और फिर भीतरी भागों के दृश्य दिखाई देते हैं।]

आकाश—स्तूप और स्तंभ तथा उनके शिला-लेखन का भी अवलोकन करो।

[सामने, दूर पर पहले साँची के स्तूप का लेख दिखता है। धीरे-धीरे वह निकट से दिखने लगता है। इसके पश्चात् स्तूप दिखता फिर उसका शिलालेख पढ़ने को मिलता है। शनैः-शनैः दृश्य परिवर्तित हो दूर पर सारनाथ का अशोक स्तंभ दिखाई देता है। कुछ देर पश्चात् वह निकट से दिखने लगता है और फिर उसका शिलालेख भी पढ़ने को मिलता है।]

आकाश—तक्षशिला का जो विश्वविद्यालय समस्त संसार में प्रसिद्ध था और जिसमें देशदेशांतर के विद्यार्थी शिक्षा पाने के लिए आते थे, उसके विशाल भवन तुम्हारे अंतर्गत हो गये थे। इन्हें मनुष्यों ने खोजकर फिर से बाहर निकाला है उनका भी निरीक्षण कर लो।

[सामने दूर पर तक्षशिला का दृश्य दृष्टिगोचर होता है, फिर शनैः-शनैः वह निकट से दिखने लगता है। उसके अनेक भवनों आदि के बाहरी तथा भीतरी दृश्य दिखाई देते हैं।]

आकाश—(पृथ्वी के निकट जा उसका आलिंगन करते हुए) क्यों? ऊर्वी, अभी भी तुम क्या यही कहोगी कि मनुष्य ने एकता का ज्ञान प्राप्त कर उसका अनुभव और उसके अनुसार कार्य करने का प्रयत्न नहीं किया?

पृथ्वी—(आकाश का दृढ़ आलिंगन करते और मुसकराते हुए) अवश्य, प्राणेश।

आकाश—(कुछ आश्चर्य से) यह कैसे?

पृथ्वी—एक प्रश्न का उत्तर दोगे?

आकाश– अवश्य, पूछो।

पृथ्वी—आज संसार मे सबसे अधिक बौद्ध मतावलंबी ही हैं न?

आकाश—हाँ, उनकी संख्या पैंतालीस करोड़ से कम नहीं है।

पृथ्वी—परंतु, उनमें सच्चे बौद्ध कितने हैं? जिस आचार-प्रधान धर्म्म का बुद्ध देव ने उपदेश किया था उसका कितने बौद्ध पालन करते हैं? पालन करना तो दूर रहा उनके आज के प्रचलित बौद्ध-मत में आचार का अत्यन्त गौण स्थान रह गया है और व्यर्थ के ढकोसलों ने प्रधान स्थान ले लिया है। सृष्टि की एकता के ज्ञानानुसार कर्म न करने के कारण जब मनुष्य और उसके संग सृष्टि का पतन हो रहा था उस समय बौद्ध-धर्म्म ने उसे रोकने का प्रयत्न अवश्य किया, किन्तु पूर्ण पतन के पूर्व पतन को रोकने के इस प्रयत्न को मैं उसी प्रकार का अवरोध मानती हूँ जिस प्रकार सृष्टि के उत्थान के समय उत्थान को रोकने के अनेक अवरोध हुए थे।

आकाश—किस प्रकार, प्रिये?

पृथ्वी—क्या तुम भूल गये कि जब सर्वप्रथम मेरी सृष्टि में चेतन जीव-सृष्टि का मत्स्य रूप स प्रादुर्भाव हुआ, उस समय उस मत्स्य को नष्ट करने के लिये राक्षस भी उत्पन्न हुआ

था। इसी प्रकार सारे उत्थान-काल में उत्थान को रोकने के प्रत्यत्न हुये, परन्तु मनुष्य की उत्पत्ति और उसके एकता के ज्ञान की प्राप्ति तक वह उत्थान न रुका। यही बात पतन के संबंध में हो रही है; और चूँकि सृष्टि चक्रवत घूम रही है उसकी सभी वस्तुएँ उसी प्रकार चक्रवत घूमती हैं, अतः बौद्धमत की उत्पत्ति के पश्चात् उसकी भी कुछ काल तक उन्नति हुई। जिस बौद्धधर्म की उन्नति के तुमने मुझे इतने दृश्य दिखाये हैं, उसकी पतितावस्था को अब मैं तुम्हें दिखाती हूँ, जिससे तुम्हें भी विस्मित दशा का स्मरण हो आये। तुम मुझसे तो कहते हो कि मैं उत्थान की सब बातें भूल गयी हूँ; मैं चाहे उन्हें न भूली होऊँ, किन्तु तुम पतन संबंधी सारी घटनायें भूल गये हो, ऐसा अवश्य जान पड़ता है। संसार को तारने के लिए जिन आधिभौतिक सुखों को सिद्धार्थ ने छोड़ा था, उन्हीं आधिभौतिक सुखों के पीछे उनके अनुयायी और साधारण अनुयायी नहीं; संघ-स्थविर तक कैसे पड़े, तथा किस प्रकार दुराचारी हो गये, यह तुम भी देख लो। तुमने तो मुझे उत्थान के दृश्य दिखाये हैं, किन्तु मैं तुम्हें पतन-सम्बन्धी बौद्ध-संघाराम का केवल एक ही दृश्य दिखाऊँगी। (आकाश के निकट से हट सामने की ओर संकेत कर) आशा है, इसी एक दृश्य का अवलोकन कर तुम्हें सारे पतन का स्मरण हो आयेगा।

[मध्याह्न का समय है। सामने संघाराम का एक विशाल कक्ष दिखाई देता है। कक्ष के सामने मंदिर है जिसमें एक ऊँची पत्थर की चौकी पर बुद्धदेव की विशाल पाषाण मूर्त्ति स्थापित है। कक्ष के बीच में अनेक भिक्षु-भिक्षुणी गोल चक्राधार रूप में बैठे हुए हैं। उनके बीच में देवी की एक नग्न प्रतिमा है। प्रतिमा के सम्मुख, एक पुस्तक, पूजन की सामग्री और मदिरा से भरे हुए अनेक घट रखे हैं। सब लोग प्रतिमा का पूजन कर रहे हैं।]

संघस्थविर—(पूजन समाप्त होने के पश्चात्) आज हमारे ब्रह्म-समाज के वार्षिक पूजन का दिवस है। भैरवी चक्र में बैठ कर पूजन समाप्त हो चुका, किन्तु महाप्रसाद पाने के पूर्व हमारी निश्चत प्रणाली के अनुसार सद्धर्म्म की थोड़ी-बहुत चर्चा हो जानी चाहिये।

सब—(एक साथ) अवश्य, अवश्य।

संघस्थविर—भगवान् बुद्ध को इस भौतिक संसार से परिनिर्वृत्त हुए सैकड़ों वर्ष हो चुके हैं, इन वर्षों में भगवान् के बताये हुए सद्धर्म्म का भलीभाँति मंथन हो चुका है और हर्ष का विषय है कि अनेक मतभेदों के उपरान्त अब हमारे गुह्य-समाज द्वारा भगवान् के उपदेशों का सच्चा ज्ञान धम्म के अठारहों निकायों को हो चला है।

एक भिक्षु—यही कारण तो हमारे गुह्त्र-समाज की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि का है।

सब—(एक साथ) अवश्य, अवश्य ।

संघ स्थविर—भगवान् बुद्ध को सर्व प्रथम पाँच दुःखों का अनुभव हुआ था अर्थात् जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय का संयोग और प्रिय का वियोग ! सत्य है न भिक्खुगणों ।

सब—(एक साथ) सत्य है, सत्य है ।

संघस्थविर— इन दुखों की निवृत्ति का मार्ग खोजने के लिए भगवान् ने षट् वर्ष तक घोर तप किया, परंतु उन्हें ज्ञान हो गया है कि तप से दुःखों की निवृत्ति नहीं हो सकती । (सामने रखी हुई पुस्तक को उठाकर खोलते हुए) यह भगवान् का स्वयं कहा हुआ वाक्य है । भगवान् कहते हैं (पुस्तक से पढ़ते हुए) 'यह दुष्कर तप बुद्धत्व की प्राप्ति का मार्ग नहीं है ।' (पुस्तक को बंद करते हुए) इसके पश्चात् यह देख कि जरा के समय जरा उपस्थित होगी ही, मरण के पूर्व व्याधि आवेगी ही, मरना एक दिन होगा ही और अप्रिय के संयोग एवं प्रिय के वियोग से दुख होना स्वाभाविक ही है, भगवान ने ज्ञान द्वारा सृष्टि को एक दृष्टि से देख समस्त विलासों को पुनः भोग, विहार करना आरंभ किया और इस प्रकार निर्वाण पद की प्राप्ति की । (पुनः पुस्तक को खोलते हुए) निर्वाण को प्राप्त कर भगवान् ने कहा है (पुस्तक से पढ़ते हुए) "चार सत्य हैं, पहला सत्य है पाँच प्रकार के दुःख,

अर्थात जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय का संयोग और प्रिय का वियोग; दूसरा सत्य है इन दुखों की निवृत्ति के लिए स्वर्ग की तृष्णा, तीसरा सत्य है इस तृष्णा का निवारण और चौथा सत्य है इस निवारण के लिए इसी संसार में अष्टांगिक मार्ग पर चलना।" (पुस्तक को पुनः बंद करते हुए) भगवान् ने कहीं ईश्वर और आत्मा का नाम तक नहीं लिया है, अतः न कहीं ईश्वर है, न कहीं आत्मा है, जो कुछ है वह यही लोक है। इस लोक में मनुष्य-योनि प्रधान है, अतएव स्त्रियाँ ही मुक्तिपागी 'प्रज्ञा' हैं और पुरुष ही मुक्ति का 'उपाय' है। हाँ, अमुक स्त्री अमुक की पत्नी है और अमुक पुरुष अमुक का पति, यह भेद भाव अज्ञान को उत्पन्न करता है। भगवान् कहते हैं, (पुनः पुस्तक को खोलकर पढ़ते हुए) "जिस प्रकार समस्त समुद्र में एक ही स्वाद है उसी प्रकार समस्त सृष्टि में एकता विद्यमान है।" (पुस्तकको यथा स्थान रखते हुए) इस एकता का पूर्ण ज्ञान मदिरा से होता है अतः वही अमृत है। बस, इसका सेवन करते हुए समाज सृष्टि में एकता का निरीक्षण कर मनुष्य को विहार करना चाहिये और विहार की अवस्था में उसे अपने मार्ग के आठों अंग दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्म, जीविका, प्रयत्न, स्मृति, और तल्लीनता पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिये।

सब—(एक साथ) धन्य है, धन्य है। भगवान् आर्हत की जय !

भगवान् बुद्ध की जय ! भगवान् तथागत की जय ! पूज्य-पाद संघस्थविर की जय !

संघस्थविर—किन्तु भिक्खुगणों, इस प्रकार के सद्धर्म्म-प्रचार में अनेक कठिनाइयाँ थीं, क्योंकि सहस्रों वर्षों से मनुष्य-समाज अस्वाभाविक और क्रूर नैतिक बंधनों में बँध चुका था। उन बंधनों को पालकर जीवन में अनेक दुख भोगने से मरण के पश्चात् स्वर्ग में सुख प्राप्त होगा इसका उसे विश्वास हो चुका था। अतः प्रपंचियों ने भगवान् के साथ उपदेश को तो छिपा दिया और अपनी संख्या बढ़ाने के उद्देश से वैदिक धर्म में कही हुई बातों में से कुछ बातें निकाला उन्हीं पुराने नैतिक बंधनों का समाज में यह कहकर पुनः प्रचार किया कि इन बातों को भगवान् बुद्ध ने कहा है।

एक भिक्षु—धिक्कार है ऐसे प्रपंचियों को !

सब—(एक साथ) धिक्कार है, धिक्कार है !

संघस्थिविर—परन्तु भिक्खुगणों, सत्य अनंत प्रयत्न करने पर पर भी सदा के लिए नहीं छिपाया जा सकता है अंत में हमारे गुह्य समाज ने (पुस्तक को उठाकर) भगवान् के इन सच्चे उपदेशों की खोज कर ही ली और सारे अस्वाभाविक एवं क्रूर नैतिक बंधनों को काट, सब में एकता का निरीक्षण करते हुये इसी जीवन में सब प्रकार के सुखों को

भोगने की समाज को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर उसे निर्माण का सच्चा मार्ग बना दिया ?

सब—(एक साथ) धन्य है, धन्य है।

संघस्थविर—(मदिरा के एक घट को उठाकर) लो भिक्खुगणों, इस महाप्रसाद 'अमृत' को पान कर मुक्ति के 'उपाय' पुरुष और मुक्तिदात्री 'प्रज्ञा' स्त्रियाँ सारा भेद-भाव भूल विहार करो। विहार के सच्चे अर्थ को हमारे समाज ने ढूँढ़ निकाला है ?

[भिक्षु-भिक्षुणी मदिरा पान करते हैं। उसके पश्चात् संघस्थविर एक-एक कर सब भिक्षुणियों का आलिंगन करता है। तदुपरांत भिक्षु-भिक्षुणी एक-दूसरे का आलिगन कर नृत्य करते और गाते हैं ? बीच-बीच में मदिरा पान भी होता है।]

गान

त्रिविध ताप नाशक मधुशाला,
मृत में जीवन ज्योति जगा दे स्वर्ग सुंदरी यह हाला।
नरनारी के भेद-भाव ने मानस को मरुरूप दिया,
बंध-विहीन स्नेह-सागर में शीतल कर लो आज हिया;
अपगत हो जीवन की ज्वाला।

—त्रिविध०

मानव के क्षण भंगु जगत् में उमड़ उठे सुख की धारा,
हास्य तरंगों में विलीन हो धर्म-नीति, आडंबर सारा,
रह जावें बस हाला-प्याला।—त्रिविध०

पृथ्वी—स्मरण आया, प्रियतम, कि किस प्रकार बौद्ध-धर्म का पतन हुआ था। यह दशा एक संघाराम की हीन थी, किन्तु अधिकांश संघारामों की यही अवस्था थी। जब मैं अपनी सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ मानव समाज के इस पतन का स्मरण करती हूँ तब लज्जा से मेरा मस्तक नत हो जाता है। कहो, हृदयेश, क्या अभी भी तुम यही कहोगे कि सृष्टि विकास के पथ से उन्नति की ओर अग्रसर है ?

आकाश—(पृथ्वी को आलिगन कर मुसकराते हुए) अवश्य, रत्नगर्भा !

पृथ्वी—यह कैसे ?

आकाश—देखो, प्राणेश्वरी, जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थों को को प्रथक्-प्रथक् रूप से देखने पर उनका जन्म, विकास और क्षय दिख पड़ता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न मतादिकों को यदि प्रथक् रूप से देखा जाय तो उनकी भी उत्पत्ति, विकास और क्षय दीख पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि प्रथक् प्रथक् पदार्थों की उत्पत्ति के पश्चात् उनका कार्य समाप्त हो जाने पर उनके उस स्वरूप का अंत होता ही है। जब बौद्धमत सृष्टि को उन्नत करने का वचन कार्य कर चुका तब उसका पतन हो गया, परन्तु सामूहिक रूप से तो सृष्टि उन्नति की ओर ही जा रही है और इस पतन से सृष्टि की सामूहिक उन्नति न रुक जाय इसलिए इस पतन के बहुत पहले तुम्हारे

ही संसार इस्राइलों के यहूदी देश में महात्मा ईसामसीह ने जन्म ले लिया था। उनके मत का प्रसार भी होने लगा था। महात्मा ईसा ने संसार के उपकार के लिए जिस प्रकार अपने प्राणों तक की आहुति दे दी वह भी तुम भूल गयी दिखती हो। जान पड़ता है, ईसा के समय का स्मरण दिलाने के लिए मुझे तुम्हें उनके समय के भी कुछ दृश्य दिखाने होंगे।

[एकाएक अँधेरा हो जाता है। थोड़ी ही देर में फिर प्रकाश फैलता है।]

स्थान—वही समय—वही

[निकट ही आकाश और पृथ्वी पीछे की ओर मुख किए हुए खड़े हैं। उनके सामने का स्थान पहले के समान ही शून्य है।]

आकाश—महात्मा ईसा के नाम का स्मरण दिलाते ही तुम्हें याद आ गया होगा कि सिद्धार्थ के समान ईसा का जन्म किसी राजवंश में न हुआ था, न उन्होंने सिद्धार्थ के सदृश महान ऐश्वर्यों को ही भोगा था। सिद्धार्थ को तो आधिभौतिक सुख भोगने के पश्चात् उनसे विरक्ति हुई थी। किन्तु उन सुखों के न माँगने पर, तथा चालीस दिनों तक लगातार उपवास के पश्चात् उन ऐश्वर्यों को सामने देखकर भी ईसा उनके लिए लालायित न हुए। दृढ़-प्रतिज्ञ ईसा किस प्रकार अपने सिद्धांतों पर अटल रहे और जिस

शैतान ने उन्हें भ्रष्ट करने को ललचाया उसे किस प्रकार असफलता मिली वही दृश्य सब से पहले मैं तुम्हें दिखाता हूँ।

[सामने एक सघन वन दृष्टिगोचर होता है। सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और वृक्षों के बीच-बीच में उसकी चमकती हुई किरणें दिखती हैं। वृक्षों के बीच मं यत्र-तत्र अनेक पाषाण-खंड पड़े हैं। उन्हीं में से एक पर ईसा बैठे हुए हैं। वे गौरवर्ण के सुंदर युवक हैं। सिर के बाल कुछ लंबे हैं किन्तु वे किसी विशिष्ट ढंग से सँवारे हुए नहीं हैं। छोटी दाढ़ी है। शरीर पर गले से पैर तक साधारण कपड़े का एक लंबा चोग़ा पहने हुए हैं जो यहाँ-वहाँ फट गया है। सिर और पैर नंगे हैं। उनके निकट ही एक अत्यंत सुंदर युवक के रूप में शैतान खड़ा हुआ है वह भी गले में पैर तक एक लंबा चोग़ा पहने हैं, परंतु उसके चोगे का कपड़ा बहुमूल्य है। सिर पर वह मुकुट लगाए हुए है तथा शरीर पर अनेक आभूषण धारण किये हुए है।]

शैतान—ऐसा सुंदर शरीर पाकर एक मिथ्या कल्पना के पीछे उसे कष्ट देने से बढ़कर और कोई मूर्खता नहीं हो सकती। तू आज चालीस दिनों से भूखा है, किंतु जिसे तू अपना पिता कहता है उस ईश्वर ने अब तक तेरी कोई सहायता न की। इसका कारण जानता है?

ईसा—क्या?

शैतान—ईश्वर का कहीं अस्तित्व ही नहीं है। तेरे संदृश्य मिथ्या

कल्पना करने और कष्ट पानेवालों को मैं सदा सहायता करने का इच्छुक रहता हूँ, क्योंकि सृष्टि का समस्त कार्य ईश्वर की शक्ति से नहीं, किन्तु मेरी शक्ति से चल रहा है। जब कभी कोई भी तेरे समान भुलावे में पड़ता है तब या तो मैं प्रत्यक्ष स्वरूप धारण कर, अथवा उसके हृदय में प्रविष्ट हो उसकी भूल सिद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ। फिर मैं किसी को अपने कथन पर अंध-विश्वास करने को नहीं कहता, किन्तु स्वयं ईश्वर के अस्तित्व की परीक्षा करने के लिए कहता हूँ। तुझसे भी मेरा यही कहना है—

ईसा—कि मैं ईश्वर के अस्तित्व की परीक्षा करूँ ?

शैतान—अवश्य।

ईसा—किस प्रकार ?

शैतान—उससे कह कि (सामने पड़े हुए पत्थरों की ओर संकेत कर) ये पाषाण-खंड रोटी बन जायँ। यदि कहीं ईश्वर होगा तो वह तेरे लिए इन पत्थरों की रोटियाँ बना देगा।

ईसा—परन्तु मैं तो यह मानता हूँ कि मनुष्य जीवन वास्तव में रोटियों पर निर्भर ही नहीं है।

शैतान—फिर काहे पर निर्भर है ?

ईसा—उन आदेशों को कुवृति में परिणत करने पर जो उसे ईश्वर की ओर से मिलते हैं! रोटियाँ तो केवल उसके आधिभौतिक शरीर को पोषण करने के लिए साधनमात्र हैं। मिलीं तो

मिलीं, न मिलीं तो न सही। शरीर रहा तो क्या और न रहा तो क्या ?

शैतान—(सिर हिलाते हुए) हाँ, (कुछ ठहर कर) अच्छा ठहर जा, अब मैं तुझे एक मंदिर के शिखर पर ले चलता हूँ। वहाँ तुझसे ईश्वर की परीक्षा करने को कहूँगा।

[सामने का दृश्य परिवर्तित हो यहूदी देश के नेज़रथ नगर का एक मार्ग दिखाई पड़ता है। मकान अधिकतर एक एक खंड के ही हैं। मार्ग पर पैदल तथा रथ घोड़ों पर एक विशाल मंदिर दिखता है। इस दृश्य का अधिकांश भाग छिप कर मंदिर निकट से दृष्टिगोचर होता है। मंदिर पाषाण का बना है और विशाल स्तंभों पर उसका शिखर है। अब मंदिर का भी अधिकांश भाग छिपकर मंदिर का शिखर दिखने लगता है। शिखर के निकट छत पर ईसा और शैतान खड़े हुए हैं।]

शैतान—तो मुझे ईश्वर पर अटल विश्वास है ?

[ईसा कोई उत्तर न दे उसके मुख की ओर देखता है।]

शैतान—अच्छी बात है, तो ईश्वर के विश्वास पर तू इस शिखर से कूद पड़। यदि कहीं ईश्वर होगा तो तेरी रक्षा करेगा।

ईसा—तू वृथा के लिए कष्ट उठा रहा है। में तो उसकी परीक्षा करना ही नहीं चाहता।

शैतान—यह क्यों ?

ईसा—विद्वानों ने कहा है कि ईश्वर की परीक्षा मत कर ?

शैतान—(झुँझलाकर) यदि तू अंधकार में ही रहना चाहता है, तो रह। (कुछ ठहरकर) नहीं, नहीं, ठहर जा। तू मूर्ख अवश्य है, पर तुझ में कुछ विशिष्ट गुण दीख पड़ते हैं, फिर तू कष्ट में हैं, अतः तेरी हठ-धर्म्मी पर भी मैं तुझे सुखी करूँगा। चल अब तुझे एक अन्य स्थान पर ले चलकर मैं केवल तेरी भूख ही नहीं बुझाऊँगा, परन्तु तुझे अतुल सम्पत्तिशाली भी बना दूँगा?

[सामने का दृश्य परिवर्तित हो दूर पर एक ऊँचा पर्वत दृष्टिगोचर होता है। धीरे धीरे पर्वत निकट से दिखने लगता है। उसके एक शिखर पर ईसा और शैतान खड़े हैं।]

शैतान—देख ईसा, तूने ईश्वरी-शक्ति को तो देखा ही नहीं है, तेरा उस पर अंध विश्वास मात्र है। तू ईश्वर की परीक्षा भी नहीं करना चाहता, किंतु तेरे कुछ विशिष्ट गुणों पर मुग्ध हो तेरे बिना कहे ही मैं अपनी परीक्षा तुझे देता हूँ। मेरी शक्ति, मेरे साम्राज्य और मेरे साम्राज्य की महान् सभ्यता एवं सम्पत्ति को देख। मेरे संमुख एक बार सिर झुका देने से तू मेरे इस समस्त साम्राज्य का उपभोग कर सकेगा। सर्व प्रथम मैं तुझे पूर्व दिशा का भारतीय साम्राज्य और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र का विपुल वैभव दिखाता हूँ—

[दूर पर अनेक शिखरों और महाद्वारों वाले कोट से घिरा हुआ पाटलिपुत्र नगर दिखता है, धीरे धीरे वह निकट से दिखने लगता है

और वहाँ का राजमार्ग दिखाई देता है। राजमार्ग के दोनों ओर बौद्ध-कालिक शिल्प के शिखरों एवं झरोखें से युक्त दो, तीन तथा चार खंड वाले विशाल भवन बने हुए हैं। भवनों के नीचे के खंड में दूकानें हैं और इस प्रकार मार्ग के उभय और दूकानों की पंक्ति हो गई है। दूकानों में विविध प्रकार की वस्तुएँ सजी हैं जिससे वह स्थान प्रदर्शिनी के समान दृष्टि गोचर होता है। दूकानों में क्रय-विक्रय करते, एवं मार्ग पर पैदल तथा हाथी, घोड़ों और रथों पर चलते हुए पाटलिपुत्र के निवासी दिख पड़ते हैं। हाथियों के हौदों और रथों पर सोने-चाँदी के कामदार पत्तर जड़े हुए हैं जिनसे वे चमक रहे हैं हाथी तथा घोड़े भी सुवर्ण-चाँदी के अनेक आभूषणों से देदीप्यमान हैं। पथिकों में अधिकतर गेहुँएँ वर्ण के लोग हैं। पुरुष प्रायः पतले, पीत कौशेय वस्त्र के उत्तरीय एवं अधोवस्त्र धारण किये है। स्त्रियाँ विविध वर्णों की बारीक साड़ियाँ पहने हैं तथा वक्षस्थल पर अनेक रंग के वस्त्र बाँधे हैं। दोनों वर्गों के वस्त्र सिले हुए नहीं हैं। उनपर सुनहरी काम है जिससे वे चमचमा रहे हैं। दोनों ही गले, भुजाओं, हाथों और कानों में रत्न जटित आभूषणों को धारण किये हुए हैं जिनसे उनके अंग-प्रत्यंग आलोकित हैं। पुरुषों में अधिकांश व्यक्तियों का सिर खुला हुआ है, जिसपर उनके लम्बे बाल लहरा रहे हैं; किसी किसी के सिर पर चमकता हुआ रत्न जटित मुकुट भी है। स्त्रियों के सिर साड़ियों से ढके हैं। अधिक तर मनुष्यों के पैरों में काष्ठ की पादुका है, कोई कोई चर्म्म के जूते भी पहने हैं। निर्धन मनुष्य कम दिख पड़ते हैं।

उनकी वेश-भूषा का भी यही ढंग है, किन्तु उनका कपड़ा सूती और मोटा है, तथा उनके शरीर पर एक तो आभूषण हैं ही नहीं और किसी किसी के शरीर पर यदि हैं तो चाँदी के। यह दृश्य परिवर्तित होकर पाटिलपुत्र का नौखंडवाला शिखरों और झरोखों से युक्त-विशाल राज-प्रासाद दृष्टिगोचर होता है। पहले प्रासाद का बाहरी भाग और उसका महाद्वार दिखता है। महाद्वार के दोनों ओर पाषाण के दो विशाल सिंह बने हैं तथा उसके सामने प्रहरी घूम रहे हैं। प्रहरी लोहे का कवच एवं शिरस्त्राण पहने हैं। बाँये कंधे पर धनुष, पीठ पर तरकश तथा कमर में खड्ग बाँधे हैं और दाहने हाथ में ऊँचा शल्य लिए हैं। फिर प्रासाद का भीतरी कक्ष दिख पड़ता है। पाषाण के खुदावदार उँचे और स्थूल स्तंभों पर कक्ष की छत है। छत तथा दीवाले सुन्दर रंगों रँगी हैं और बौद्धधर्म्म-सम्बन्धी अनेक मनोहर चित्र बने हैं। फर्श पर रंग-बिरगी बिछायत है और उस पर सोने-चाँदी की रत्न जटित देदीप्यमान अनेक वस्तुएँ सजी हैं। यह दृश्य भी परिवर्तित होता है और कुंडों से युक्त हरा-भरा विस्तृत रजोद्यान दिखता है। होलिकोत्सव के कारण कुंडों में केशरी और लाल रंग घुला हुआ है। भारत-सम्राट् अनेक युवक युवतियों के संग बसंती वस्त्र पहने हुए होली खेल रहे हैं। सुवर्ण चाँदी की पिचकारियों में एक दूसरे पर रंग डाला जा रहा है और गुलाल अबीर उड़ रहा है। अनेक वाद्य बज रहे हैं और गायन भी हो रहा है जो सुनाई देता है—]

गान

मलय समीरण के कंपन पर, मंद चरण रख आली,
पंकज तन, गुलाब के कंकन, मुख पर कुमकुम लाली,
मदिर पवन चंचल अंचल में, भर पराग की झोली,
मधु माधव से हिल-मिल आई लाल-लाल सखि, होली।
पल्लव के कोमल अंगों पर कुसुम सुरभि अलसाये।
गूँजे निभृत हृदय की वीथी कोमल कुहुक सुनाये।
अरविंदों के मधु मन्दिर में अलिदल लूट मचाये,
पदमल लोचन पट भर ढाँकें मन का धन छिप जाये।
कुमकुम पंक लिये हाथों में प्रिय अंतर में आये,
पुलक स्वेद से सारी भीगे मुख पर लाली छाये।
मन के रस से भर पिचकारी प्रिय छिड़के नयनों में,
आर्द्र कपोल हृदय हो जावें मधु बिखरे सुमनों में।
अवनी ने अंबर से खेली होली रज उड़ छाई,
दिन मणि को केसर से रँग संध्या बाला मुसकाई।
उर परिमल अबीर में घुल मिल निज सौरभ फैलाये,
लाल गुलाब उड़े सखि, मेरी, प्रिय का मन रंग जाये।

[गायन समाप्त होने पर वह दृश्य शनैः-शनैः लुप्त हो जाता है ।]

शैतान— अब पूर्व दिशा का चीन देश और उसकी राजधानी लोयांग के महान् ऐश्वर्य का अवलोकन कर।

[सामने दूर पर चीन देश की राजधानी लोयांग दिखती है। धीरे-धीरे वह निकट से देखने लगती है, और वहाँ का प्रधान मार्ग दिखता है। मार्ग के उभय ओर एक ओर कोई कोई दो खंड के भवन बने हैं। सभी भवन ऊपर से चपटे तथा एक से हैं। भवनों में काष्ठ का अधिक प्रयोग है। मार्ग पर पैदल तथा रथ और घोड़ों पर वहाँ के निवासियों का आवागमन दिखाई देता है। इन लोगों में अधिकांश के वर्ण में कुछ पीलापन है। पुरुषों और स्त्रियों दोनों की वेशभूषा बहुत मिलती जुलती है। दोनों ही दो वस्त्र धारण किये हैं। एक ऊपर के अंग में जो गले से कमर तक लम्बा है और एक नीचे के अंग में जो कमर से पैर तक है। ऊपर का वस्त्र सिला हुआ है और नीचे का बिना सिला। स्त्रियों के ऊपर के वस्त्र की बाहें इतनी लम्बी हैं कि उनके हाथ नहीं दिखते। दोनों के वस्त्र रेशमी हैं, और अधिकांश का रंग नीली झाई लिए हुए लाल अथवा सर्वथा नीला है। सुनहरी काम के कारण ये वस्त्र जगमगा रहे हैं। पुरुष सिर पर विविध रंगों के छोटे छोटे रेशमी वस्त्र बाँधे हैं। जिनके पीछे उनकी गुथी हुई लंबी शिखाएँ लटक रहीं हैं। स्त्रियाँ नंगे सिर हैं और उनके बालों के बड़े बड़े जूड़े सामने की ओर बंधे हैं। स्त्रियों के पैर बहुत ही छोटे हैं। छोटे पैरों के कारण वे—लड़खड़ाती हुई चलती हैं। पुरुष गले में अनेक रत्न जटित आभूषण पहने हैं। तथा स्त्रियाँ गले, हाथें और कानों में भी। वस्त्र और आभूषणों से स्त्री-पुरुषों के अंग-प्रत्यंग चमक रहे हैं अधिकांश व्यक्ति चर्म के जूते पहने हैं। इन जूतों पर भी सुनहरी काम

है। निर्धनों की वेश-भूषा का भी यही ढँग है। किन्तु उनके वस्त्र रेशमी न होकर मोटे सूती हैं। साथ ही उनके शरीर पर भूषण भी नहीं है। यह दृश्य परिवर्तित होकर वहाँ का तीन खंड वाले राज-भवन का बाहिरी भाग दिखाता है। उसके महा द्वारपर पाषाण की विशाल 'पायलौ' (Pailau) एक प्रकार की महराब है। यहाँ भी कवच एवं शिरस्त्राण पहने तथा धनुष, तर कश, खंग आदि बाँधे प्रहरी घूम रहे हैं। भवन के ऊपर एक के ऊपर दूसरी और दूसरी पर तीसरी इस प्रकार तेहरी छत है। छत के सामने के भाग पर सुंदर खुदाव का काम है। तदुपरांत-भवन का भीतरी कक्ष दिखता है। इसके स्तंभ यद्यपि ऊंचे और स्थूल हैं तथापि काष्ठ के हैं। छत और दीवालों पर सुंदर रंग है जिस पर प्राकृतिक दृश्यों के अत्यंत मनोहर चित्र बने हैं। चित्र एक विशेष प्रकार के रेशमी कपड़े पर बनाए गए हैं और वह कपड़ा दीवाल पर लगा है। फर्श पर रेशमी वस्त्र की बिछायत है, जिस पर सोने-चाँदी का रत्नों से जड़ा हुआ बहुतसा सामान सजा है। यह दृश्य भी परिवर्तित होकर हरा भरा विस्तृत राजोद्यान दृष्टि गोचर होता है। दीप-उत्सव के कारण उद्यान के वृक्षों पर कागज़ की अगणित लालटेनें टँगी हैं। उन लालटेनों पर भिन्न भिन्न रंगों में विविध प्रकार के दृश्य रँगे हुए हैं और उनके भीतर बत्तियाँ जल रही हैं। उद्यान के बीच में एक विशाल चौतरा है जिस पर रंग-विरंगी सुंदर रेशमी चाँदनी तनी हुई है। चौतरे के फर्श पर रंग-विरंगी रेशमी बिछायत है। सामने की ओर सुवर्ण का रत्न जटित सिंहासन है। सिंहासन के दोनों ओर सुवर्ण

की चौकियों की पंक्ति है। सिंहासन पर चीन-सम्राट् और चौकियों पर वहाँ के प्रतिष्ठित स्त्री पुरुष बैठे हुये हैं। बीच के रिक्त स्थान पर नर्तकियों का नृत्य हो रहा है और वाद्य बज रहे हैं। उद्यान में चीन का साधारण जन समुदाय खड़ा है। धीरे धीरे यह दृश्य भी लुप्त हो जाता है।]

शैतान—चीन देश की एक अद्भुत वस्तु तुझे और दिखाता हूँ; यह है वहाँ की महान् दीवाल, जो शत्रुओं से चीन की रक्षा करने के लिए लगभग ढ़ाई सौ वर्ष पूर्व बनाई गई थी। तुझे सुनकर आश्चर्य होगा, कि इसकी लम्बाई १२५० कोस है। इस दीवाल में बीस सहस्र दुर्ग हैं, और दस सहस्र शिखर। दुर्गों में तीस लाख सैनिक निवास करते हैं। शिखरों पर नित्य प्रहरी खड़े रहते हैं। इस दीवाल को बनाने में सात लाख मनुष्यों ने एक साथ कार्य किया था।

[सामने चीन की विशाल दीवाल का एक भाग दिखता है, उसके अनेक शिखर दिखते हैं और फिर एक दुर्ग भी दिख पड़ता है। शनैः-शनैः यह दृश्य भी लुप्त हो जाता है।]

शैतान—अब पूर्व दिशा के ही ईरान देश की प्राचीन राजधानी पारस्यपुर और उसकी वसुधा का निरीक्षण कर। यद्यपि इस समय ईरान देश के अधिकांश भाग पर पार्थिआ के लोगों का अधिकार हो गया है और पारस्यपुर की गिरती हुई अवस्था है तथापि अभी भी वहाँ की संपदा देखने योग्य है।

[सामने दूर पर पहाड़ियों की तराई में फारस देश की पुरानी राजधानी पारस्यपुर (Persepolice) दिखाई देती है, फिर वह निकट से दिखने लगती है, और वहाँ का मुख्य मार्ग दिखता है। मार्ग के दोनों ओर चौंतरों पर दो-दो तीन खण्ड के पत्थर के सुंदर भवन बने हुये हैं। कोई कोई यत्र-तत्र खंडित भी हो गये हैं। मार्ग पर पैदल तथा रथों और घोड़ों पर वहां के निवासी दिखाई देते हैं; जो गौर वर्ण के हैं। पुरुष गले से पिंडलियों तक ढीले चोगे और कमर से पैरों तक ढीले पाजामे पहने हैं। चोगे में बाहें न होने के कारण दोनों भुजाएँ खुली हैं। शिर पर वे गोल ऊँची टोपियाँ लगाये हैं। जिन पर कलगियाँ हैं। पैरों में चमड़े के जूते हैं। स्त्रियाँ गले से कमर तक चुस्त सिला हुआ 'सदरी' के सदृश्य वस्त्र पहिने हैं, और कमर से पैर तक ढीला पाजामा। उनकी भुजायें भी खुली हुई हैं। शिर को वे एक पतले कपड़े से ढाँके हैं, जो गले में लपट कर पीछे की ओर पीठ पर पड़ा हुआ है। पैरों में वे भी चमड़े के जूते पहने हैं। दोनों ही वर्गों के वस्त्र भिन्न भिन्न वर्णों के रेशमी हैं और उन पर सुनहरी काम है। पुरुष गले में और स्त्रियाँ गले, हाथों और कानों में रत्न जटित आभूषण धारण किए हैं। वस्त्रों और भूषणों से स्त्री पुरुषों के शरीर चमचमा रहे हैं। निर्धनों की वेषभूषा भी इसी प्रकार की है; परन्तु उनके वस्त्र सूती तथा मोटे हैं। वे आभूषण भी नहीं पहने हैं यह दृश्य परिवर्तित होकर एक्स रैक्सस (Xerses) के बनवाये हुये प्रसिद्ध राजमहल का बाहिरी भाग दिखाई देता है। महाद्वार पर सशस्त्र प्रहरी हैं। महल एक ऊँचे चौतरे पर बना हुआ है

और उस पर चढ़ने के लिये चौड़ी सीढ़ियाँ हैं। महल के निर्वाण में यद्यपि पाषाण का ही उपयोग हुआ है; तथापि यत्र तत्र वह टूट गया है। फिर महल का भीतरी विशाल सभा-भवन दिखता है। सभा-भवन का छत पाषाण के अत्यंत ऊँचे और स्थूल स्तंभों पर है; जो खुदाव के काम से विभूषित है। छत तथा दीवालों पर सुंदर रंग एवं मनोहर चित्र हैं। फर्श पर रंग विरंगे वस्त्र बिछे हैं। कक्ष के बीच में सुवर्ण की गद्दीदार चौकी रखी है। उसके सामने एक और चौकी है। दोनों के बीच में टेबिल के सदृश एक और चौकी है। इस चौथी पर शतरज बिछी हुई है; एक ओर के मोहरे सुवर्ण के हैं और दूसरी ओर के चांदी के। पहिली चौकी पर वहां के नरेश तथा दूसरी पर वहां के एक प्रतिष्ठित सज्जन बैठे हुये शतरंज खेल रहे हैं। दोनों के निकट दो और ऊँची सुवर्ण की चौकियाँ रखी हैं; जिन पर सुवर्ण के सुरा पात्रों में मदिरा रखी है। इधर उधर और भी कई चौकियाँ हैं, जिन पर राज-कर्मचारी आदि बैठे हैं। अनेक दास, दासी खड़े हुये हैं। शनैः-शनैः यह दृश्य भी लुप्त हो जाता है।]

शैतान—अब पश्चिम के रोमक साम्राज्य की राजधानी और वहाँ की महा संपदा देख।

[सामने कुछ दूर छोटी-छोटी सात पहाड़ियों पर बसा हुआ रोम नगर दिखाई देता है, फिर वह निकट से दिखने लगता है और उसका प्रधान मार्ग दृष्टिगोचर होता है। मार्ग के दोनों ओर पंक्ति में ऊँचे-

ऊँचे एक-एक खंड के मकानों में दूकाने हैं। जो विविध प्रकार की वस्तुओं से सजी हुई हैं। इस मार्ग पर पैदल तथा रथों और घोड़ों पर रोम का जन-समुदाय दिखाई देता है। अधिकांश लोग गेहुँये रंग के हैं। पुरुष गले से जांघों तक लंबे सिले हुये वस्त्र (Tunica) पहने हैं, जो कमर में कमर पेटी से बँधे हैं। कमर से पिंडलियों तक वे धोती के सदृश बिना सिला वस्त्र धारण किये हैं। ऊपर के सिले हुये वस्त्र में बाहें नहीं हैं अतः भुजायें खुली हुई हैं इन वस्त्रों के ऊपर अधिकांश लोग एक लम्बा श्वेत दुपट्टा (Toga) लिए हुये हैं; जो बांयें कंधे से नीचे की ओर झूल रहा है, तथा दाहिनी भुजा के नीचे से शरीर पर लिपटा हुआ है। अधिकतर व्यक्तियों का शिर खुला हुआ है, कोई कोई मुकुट लगाये हुए हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर के अंग में पुरुषों के समान ही सिला हुआ वस्त्र पहने हैं, उनकी भुजायें भी खुली हैं, किन्तु उनका वस्त्र (stola) पैरों तक लंबा है। अनेक स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान दुपट्टा (toga) लिये हैं, जो उनका शिर भी ढाँके हुये हैं। जो स्त्रियाँ दुपट्टा नहीं लिये हैं वे शिर को एक पृथक पतले कपड़े (veil) से ढाँके हुये हैं। अनेक स्त्रियों के मुख पर इसी कपड़े का घूँघट भी है। दोनों वर्गों के वस्त्र ऊनी एवं रेशमी हैं तथा उन पर सुनहरी काम है। दोनों ही वर्गों के पैरों में चमड़े के हलके जूते हैं। पुरुष गले और अँगुलियों में रत्न-जटित आभूषण और अँगूठियाँ पहने हैं। स्त्रियाँ गले और अँगुलियों के अतिरिक्त कानों में 'इअररिंग' धारण किये हैं और बालों में 'स्टार' आदि लगाये हैं। निर्धनों की वेषभूषा भी इसी प्रकार की है, किंतु

उनके कपड़े सूती हैं, साथ ही वे भूषणों से रहित हैं। यह दृश्य परिवर्त्तित होकर शुक्र (Venus) का संगमरमर के विशाल मंदिर का बाहिरी भाग दिखाई देता है। मंदिर का प्रवेश-द्वार अत्यंत ऊँचा है। फिर मन्दिर का भीतरी भाग दिखता है, बीच में विस्तृत चौक है और तीन ओर चौड़ी दालान है, जिनकी छत महराबों पर स्थित है और महराबों को स्तंभ उठाये हुये हैं। छत, महराबें स्तंभ और फर्श सभी पर संगमर्मर लगा हुआ है। बीच की दालान में अनेक संगमर्मर की मूर्त्तियां सजी हैं। इस दालान के बीचों बीच भीतर की ओर मंदिर का मुख्य कक्ष है, जिसमें शुक्र की प्रतिमा है। मंदिर में दर्शन करने वालों के झुंड के झुंड आ, जारहे हैं। यह दृश्य भी परिवर्तित होकर मार्से (marseilles) के विशाल नाटक घर का बाहिरी भाग दिखाई देता है। फिर नाटक घर का भीतरी भाग दिखता है। सामने की ओर ऊँची रंगभूमि है और उसके सामने अर्द्ध चंद्राकार रूप में दर्शकों के बैठने की चौकियाँ हैं। रंगभूमि के ऊपर जिसे महराबें और स्तंभ उठाये हुये हैं, छत है। दर्शकों के बैठने का स्थान ऊपर से खुला हुआ है। नाटक घर बत्तियों से जगमगा रहा है। नाटक आंरभ होने वाला है और चौकियों पर बैठे हुये दर्शक उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह दृश्य भी परिवर्तित होता है और अब 'घेरमे' स्नानागार का बाहिरी भाग दिखाता है। स्नानागार एक ऊँचे चौंतरे पर बना हुआ है। फिर स्नानागार का भीतरी कक्ष दिखता है, जिसमें स्नान के लिए जाने वाले स्त्री पुरुष बैठे हुये स्नान की तैयारी कर रहे

हैं। इस कक्ष की छत भी स्थूल स्तंभों पर है और छत और दीवालों पर सुंदर चित्रकारी, फिर पुरुषों के स्नान के चार कक्ष दिखाई देते हैं। एक में भाप, दूसरे में गरम पानी के फुहारे, तीसरे में गरम पानी के कुंड और चौथे में ठंडे पानी का तड़ाग है। ठंडे पानी का तड़ाग इतना बड़ा है, कि उसमें कई पुरुष सुविधा-पूर्वक तैर सकते हैं। इन सब कक्षों में पुरुष स्नान कर रहे हैं। इसी प्रकार स्त्रियों के स्नान करने वाले चार कक्ष दिखते हैं, जिनमें स्त्रियों का स्नान दृष्टिगोचर होता है। यह दृश्य भी परिवर्तित होकर रोम की 'पैलेटाइन' (palatine) नामक पहाड़ी पर विशाल राज-प्रासाद का बाहिरी भाग दिखता है, जिसके महाद्वार पर सशस्त्र प्रहरी हैं, फिर प्रासाद का विस्तृत भीतरी कक्ष दिखाई देता है; जो अगणित बत्तियों के प्रकाश से जगमगा रहा है। कक्ष की छत स्थूल संगमर्मर के स्तंभों पर है। छत और दीवालों पर भी संगमर्मर लगा हुआ है। स्तंभों के नीचे की चौकियों और ऊपर की टोड़ियों पर विविध प्रकार की मनोहर मूर्तियाँ खुदी हैं और छत एवं दीवालों पर भी खुदाव का सुंदर काम है। फर्श पर रंग विरंगे वस्त्र बिछे हैं और सोने चाँदी की ऊंचे ऊंचे रत्न जटित अनेक वस्तुएँ सजी हैं। बीच में सुवर्ण के रत्नजटित सिंहासन पर रोमक सम्राट् बैठे हुये हैं। सिंहासन के पीछे अनेक दासियाँ खड़ी हैं और सिंहासन के सामने अनेक युवतियाँ नृत्य कर रही हैं तथा अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य बजा रही हैं। सम्राट् और युवतियों के चमचमाते हुए वस्त्राभूषण आँखों को चकाचौंध कर रहे हैं। धीरे-धीरे यह दृश्य भी लुप्त हो जाता है।]

शैतान—मैं तुझे पश्चिमी सभ्यता के मूल स्थान यूनक और वहाँ की राजधानी एथेन्स को अब न दिखाऊँगा, क्योंकि वह दीर्घकाल से रोमक साम्राज्य के अंतर्गत है। रोम में जिस सभ्यता और संस्कृति का तूने अवलोकन किया, वह यथार्थ में यूनक की ही है, क्योंकि रोमक लोग तो बर्बर थे, और उन्होंने यूनक की ही सभ्यता को ग्रहण कर उसे बढ़ाया है। किन्तु मिश्र देश के प्रसिद्ध 'पिरेमिड' और 'एलैक्जैंड्रिया' राजधानी की वसुधा तुझे और दिखाता हूँ। यद्यपि मिश्र भी इस समय रोमक साम्राज्य के अंतर्गत हो गया है, किन्तु एक तो उसे रोम के अंतर्गत हुये अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है, दूसरे वहाँ की सभ्यता संसार में अपना पृथक एवं विशिष्ट स्थान रखती है और तीसरे मिश्र की सभ्यता के दर्शन करने से तुझे प्राचीन बैबीलोनिया और असीरिया की सभ्यता कैसी थी, इसका भी ज्ञान हो जायगा, क्योंकि मिश्र की सभ्यता और बैबीलोनिया और असीरिया की सभ्यता का प्रायः एक सा ही रूप था।

[सामने दूर पर 'गिजेह' (Gijeh) पहाड़ी दिखती है, जिस पर 'खुफू' (Khufu) 'खाफरा' (Khafra) और 'मैनकॉरा' (Men-kaura) मिश्र देश के तीनों प्रसिद्ध 'पिरेमिड' दिखाई देते हैं। इनके इधर-उधर भी और भी कई छोटे-छोटे पिरेमिड हैं, जिनमें अनेक टूट-फूट गए हैं। कुछ और निकट से दिखने पर जान पड़ता है, कि सभी

पिरेमिडों की बनावट एक सी ही है। सभी ऊँचे चौकार चौतरों पर बने हैं। उनकी बाहिरी दीवालें चार न होकर तीन ही हैं, जिनके एक दूसरे से मिले रहने के कारण प्रत्येक पिरेमिड—त्रिकोणाकार हो गया है। हर पिरेमिड के नीचे का भाग चौड़ा है, जैसे-जैसे पिरेमिड ऊँचा होता गया है वैसे-वैसे यह चौड़ाई कम होती गई है और अंत में ऊपर जाकर 'नोक' में परिणित हो गई है। बाहिरी दीवालों पर पत्थर लगा हुआ है और बाहर से देखने पर पिरेमिडों में कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। धीरे धीरे 'खुफू' पिरेमिड बहुत समीप से दिखने लगता है, फिर उसके भीतरी कक्ष दिखते हैं और तब उसकी महान् विशालता का अनुमान होता है। उसके भीतर के कक्षों में पत्थर का सुंदर काम है। यह दृश्य परिवर्तित होकर दूर पर एलैक्स्जैंड्रिया नगर दिखाई देता है। फिर वह निकट से दिखने लगता है और उसका मुख्य मार्ग दृष्टिगोचर होता है। मार्ग के दोनों ओर एक एक खंड के सुंदर गृह बने हुये हैं। गृहों के चारों ओर यथेष्ट अहाता है, जिसमें सामने सुंदर उद्यान है तथा पीछे एक एक बड़ा कुंड। मार्ग पर पैदल तथा रथों और घोड़ों पर वहाँ के निवासियों का आवागमन दिखाई देता है। अधिकांश लोग सांवले रंग के हैं। पुरुष गले से घुटने तक लंबा मिला हुआ जामे सदृश घेरदार वस्त्र तथा कमर से पैर तक बिना सिला धोती के सदृश कपड़ा पहिने हैं। ऊपर का वस्त्र कमर पर कमर पेटी से बंधा है। बायां कंधा और बांई भुजा ढकी है, परन्तु दाहिनी ओर कंधे के निकट से वस्त्र इस प्रकार कटा हुआ

है, कि दाहिना कंधा और भुजा खुली हुई है। सिरपर वे छोटे छोटे साफे बाँधे हुये हैं। स्त्रियाँ गले से पैरों तक एक ही सिला हुआ वस्त्र पहने हैं। जो कमर तक चुस्त है और कमर के नीचे लँहगे के सदृश घेरदार। कमर पर वे भी कमर पेटी लगाए हैं और उनका भी दाहिना कंधा एवं दाहिनी भुजा खुली हुई है। इस सिले हुए वस्त्र के अतिरिक्त एक पतले दुपट्टे के सदृश वस्त्र से वे सिर ढाँके हैं। यह वस्त्र उनके बांये कंधे से नीचे तक लंबा लटका हुआ है। स्त्री, पुरुषों दोनों के वस्त्र पतले सूत के बने हैं, अधिकतर वे लाल, पीले और श्वेत रंग के हैं, और उन पर सुनहरी काम है। पुरुष गले और अँगुलियों में हार एवं अँगूठियाँ पहने हैं। स्त्रियाँ गले और अँगुलियों के अतिरिक्त हाथों में कड़े और कानों में भी बालियाँ पहने हैं। तथा बालों के नीचे मस्तक पर एक रत्न जटित स्वर्ण की पट्टी बाँधे हैं। दोनों वर्गों के व्यक्ति पैरों में चमड़े के जूते पहने हैं। चमकते हुये वस्त्र और भूषणों से सब के अंग प्रत्यंग देदीप्यमान हैं। निर्धनों की वेषभूषा भी इसी प्रकार की है, किन्तु उनके वस्त्र मोटे हैं तथा उनके शरीर पर आभूषण नहीं हैं। यह दृश्य भी परिवर्त्तित होकर वहां के अजायब-घर का बाहिरी भाग दिखाई देता है। अजायब घर पत्थर का बना हुआ है। फिर उसके भीतरी कक्ष दिखते हैं उनमें विविध प्रकार की वस्तुएँ सजी हुई हैं। यह दृश्य भी परिवर्तित हो जाता है। अब राज-महल का बाहिरी भाग दिखाई देता है, जिस पर सशस्त्र प्रहरी घूम रहे हैं, तदुपरांत महल का भीतरी कक्ष दिखता है। इसकी छत पाषाण

के स्थूल स्तंभों पर है । स्तभों पर खुदाव का काम है, और छत तथा दीवारो पर चित्रकारी । फर्श पर गद्दीदार श्वेत बिछावन है, जिस पर स्वर्ण की चौकियाँ पंक्तियों पर रखी हुई हैं । चौकियों की सामने स्वर्ण को थालों में भोजन की विविध सामग्रियाँ सजी हुई हैं । बीच की चौकी पर जो अन्य चौकियोंसे बड़ी है, मिश्र नरेश तथा अन्य चौकियों पर मिश्र देश के प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष बैठे हुये भोजन कर रहे हैं । इनके वस्त्राभूषणों से सारा दृश्य जगमगा रहा है ।]

शैतान—देखा, मेरे पृथ्वी के विशाल साम्राज्य और विपुल वैभव को । अपने राज्य और संपत्ति का अनुमान कराने मैंने तुझे केवल उसके थोड़े से अंश को दिखाया है । यदि सारा वैभव तुझे दिखाऊँ तब तो न जाने कितना समय लगेगा । यदि तू काल्पनिक ईश्वर का विश्वास छोड़ दे तो इस समस्त साम्राज्य और संपत्ति का उपभोग कर सकता है ।

ईसा—यह सारा साम्राज्य और वैभव भी ईश्वर का ही है, तेरा नहीं । हाँ, इसे भोगने और सदा इसे अपने अधिकार में रखने की लोभ-भावना अवश्य तेरी सम्पत्ति है । तू वृथा ही मुझे ललचाने का कष्ट कर रहा है, मैं लालच में आनेवाला नहीं । मैं ईश्वर की ही सेवा करूँगा ।

आकाश—क्या अब भी तुम यही कहोगी, प्राणाधिके, कि मनुष्य अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर की इंद्रियों को तृप्त करने में ही लगा हुआ है । इस महा परीक्षा में उत्तीर्ण होने के

पश्चात् महात्मा ईसा ने ईश्वर की ही सेवा करने की अपनी प्रतिज्ञा को ईश्वर के सच्चे स्वरूप इस संसार की सेवा कर किस प्रकार कार्य रूप में परिणत किया, इसका स्मरण दिलाने अब मैं तुम्हें पहिले वह दृश्य दिखाता हूँ, जहाँ एक पर्वत शिखर पर से ईसा इसी संसार को—स्वर्गीय राज्य बनाने की अपनी विधि जन समूह को बतला रहे हैं।

[सामने दूर पर पर्वत का एक छोटा सा शिखर दृष्टिगोचर होता है। डूबते हुये सूर्य की सुनहरी किरणें इस शिखर पर पड़ रहीं हैं। उसके सामने दूर दूर तक मनुष्य समूह दिख पड़ता है। धीरे धीरे पर्वत शिखर निकट से दिखने लगता है। इस पर्वत शिखर पर बैठे हुये ईसा गंभीर स्वर में भाषण दे रहे हैं। नीचे खड़ा हुआ जन समुदाय उनका भाषण उनकी ओर एकटक देखते हुये एकाग्रता और श्रद्धा से सुन रहा है।]

ईसा—धन्य हैं, वे जिनकी आत्माएँ निराभिमान हैं, क्योंकि स्वर्गीय राज्य उन्हीं के लिए है। धन्य हैं वे जो पश्चात्ताप करते हैं, क्योंकि वे ही शांति पायंगे। धन्य हैं वे जो निर्बल हैं; क्योंकि पृथ्वी का राज्य उन्हीं को मिलेगा। धन्य हैं वे जो न्याय के लिए भूख और प्यास सहन करते हैं, क्योंकि उन्हीं की तृप्ति होगी। धन्य हैं, वे जिनका हृदय दयापूर्ण है, क्योंकि उन्हीं पर दया की जायगी। धन्य हैं वे जिनके शुद्ध अन्तः करण हैं, क्योंकि वे ही ईश्वर के दर्शन करेंगे। धन्य हैं वे जो शाँति

के संस्थापक हैं, क्योंकि वे ही ईश्वर की संतान कहलायँगे, और धन्य हैं वे जो न्याय परायणता के लिए दंड पाते हैं, क्योंकि स्वर्गीय राज्य उन्हीं के लिए है।

['ईश्वर के पुत्र की जय', 'महात्मा ईसा की जय', शब्द होते हैं।]

ईसा—बंधुओ ! तुम पृथ्वी के नमक हो। यदि नमक के स्वाद में खार न रहे तो उसमें वह कहाँ से मिलाया जा सकता है। फिर तो वह पैरों से कुचलने योग्य रह जाता है। अतः ध्यान रखो, कि कर्तव्य पथ से च्युत होकर तुम कहीं उस नमक के समान न हो जाओ जिसका खार नष्ट हो गया है, साथ ही मित्रो ! तुम संसार के प्रकाश हो ! दीपक को जलाने के पश्चात् वह दीवट पर रखा जाता है और उससे गृह की वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं। अतः तुम भी ऐसे कार्य करो, कि तुम्हारा जीवन अन्यों के लिए दीपक के सदृश होवे।

[पुनः जयजयकार होता है।]

ईसा—अब तक तुमने सुना है, कि हिंसा न करो, पर मैं तो कहता हूँ कि क्रोध ही न करो, क्योंकि क्रोध ही हिंसा का पिता है। तुम ने आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत का उपदेश सुना है, किन्तु मैं तो कहता हूँ कि प्रतिकार लेने की ओर दृष्टि ही मत रखो। यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चपत मारे तो तुम दूसरा गाल उसके संमुख कर दो। तुमने अपने पड़ोसी से प्रेम और बैरी से बैर

करने की बात सुनी है, किंतु मैं तो तुम्हें अपने बैरियों से भी प्रेम करने के लिए कहता हूँ। जो तुम से प्रेम करते हैं, उनसे यदि तुम भी प्रेम करो तो इसमें पुरस्कार पाने योग्य बात ही कौनसी है। जो तुमसे घृणा करते हैं, उनसे प्रेम, और जो तुम्हें सताते हैं उन्हें क्षमा करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो, पर जो कुछ तुम करो उसमें कपट और दिखावे को स्थान मत दो। प्रार्थना, व्रत, दान हर कार्य धूर्त्तता और प्रदर्शन से रहित होना चाहिए।

[पुनः जय जय कार।]

ईसा—मित्रो! कोई मनुष्य दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। तुम ईश्वर और धन दो की सेवा नहीं कर सकते। आधिभौतिक सुखों के लालच में मत पड़ो। न्यायपरायण होकर ईश्वर के स्वर्गीय राज्य की प्रजा होने पर ये सुख तो छायावत अपने आप तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे।

[पुनः जय जय कार।]

ईसा—दूसरों के दोष देखने और दूसरों को उपदेश देने के पहले अपने दोषों को देखो और अपना सुधार करो। अपनी आँख में पड़ी हुई लकड़ी को न देख दूसरे की आँख में पड़े तिनके को क्यों देखते हो। जब तक अपनी आँख में पड़ी हुई लकड़ी को नहीं निकाल देते तब तक दूसरे की आँख के तिनके को किस प्रकार निकाल सकते हो? जब तुम अपनी

आँख की लकड़ी को निकाल दोगे तब दूसरे की आँख के तिनके को निकाल सकोगे।

[पुनः जय जय कार।]

ईसा—बंधुओ! अंत में मैं यही कहना चाहता हूँ, कि जो मेरी कही हुई बातों पर चलेगा, उसका जीवन उस बुद्धिमान के गृह-सदृश होगा, जो चट्टान पर बनाया जाता है और जिसे भीषण तूफ़ान, आँधी और वर्षा कोई भी डिगा सकने में असमर्थ होती हैं, किंतु जो मेरी बातों की अवहेलना करेगा, उसका जीवन उस मूर्ख के घर के समान होगा, जो बालू पर बनाया जाता है।

['ईश्वर के पुत्र की जय', 'महात्मा ईसा की जय,' इत्यादि शब्द होते हैं।]

आकाश—सुना, प्रिये, ईसा का यह अपूर्व उपदेश? स्मरण आया तुम्हें ईसा के महान् आचार धर्म का प्रतिपादन? इस उपदेश के पश्चात् ईसा ने इसी संसार में स्वर्गीय राज्य स्थापित करने वाले अपने आचार धर्म का स्वयं जिस प्रकार व्यवहार किया, समस्त संसार से प्रेम करते हुए दीन-दुखियों की जिस प्रकार सेवा की और अपने बारह निकटतम शिष्यों को अपने धर्म का प्रचार करने के लिए जिस प्रकार देश देशांतर को भेजा, वह सब वृत्त अब तो तुम्हें स्मरण आ ही गया होगा? ईसा जब जरूसलम आये तब वहाँ की धर्म

एवं राजसत्ता ने उनके स्वर्गीय राज्य की स्थापना के प्रयत्न को अपने लिए भयानक मान उन्हें किस प्रकार प्राण दंड दिया, वही दृश्य अब मैं तुम्हें दिखाता हूँ। जरूसलम के प्रधान धर्माचार्य 'कियाफा' के यहाँ षड्यंत्रकारियों की सभा का अवलोकन करो।

[सामने जरूसलम के प्रधान धर्माचार्य कियाफा के भवन का कक्ष दिखाई देता है, जिसकी छत स्थूल पत्थर के स्तंभों पर है। सामने एक सिंहासन के सदृश चौकी पर कियाफा बैठे हुए हैं। उनके सामने अनेक चौकियाँ है जिन पर अनेक धर्माचार्य (Priests) कानून के आचार्य (Seribes) और प्रजा प्रतिनिधि (elders of the people) बैठे हैं। कियाफा गले से पैर तक एक लंबा लाल चोगा पहने हैं। जिस पर सुनहरी काम है और जिसमें सुवर्ण की छोटो छोटी घंटियाँ लगी हैं। शिर पर वे मुकुट लगाये हैं। शेष सभी लोग गले से पैर तक विविध रंगों के लम्बे चोगे पहने हैं और सिर पर भिन्न-भिन्न रंगों के छोटे-छोटे कपड़े बाँधे हुए हैं जो पीछे की ओर लटक रहे हैं।]

कियाफा—तूफ़ान! इससे बड़ा तूफ़ान और क्या होगा? जहाँ वह जाता है वहीं तूफ़ान के समान जाता है। सारे प्राचीन सिद्धांत रूपी वृक्ष उसकी शब्दावली रूपी आँधी से जड से हिलने और उखड़-उखड़कर गिरने लगते हैं।

एक धर्माचार्य—जिस समानता के सिद्धांत का वह प्रचार करता है

वह सिद्धांत ही हमारे मूल धार्मिक सिद्धांत के ठीक विपरीत है। यहूदी जाति तो ईश्वर की चुनी हुई जाति है। हमारी और अन्य जातियों की समानता ! यह क्यों कर हो सकता है ?

एक प्रजा-प्रतिनिधि—उसका स्वर्गीय राज्य भी तो अद्भुत कल्पना है ! ऐसा राज्य कभी स्थापित हो सकता है, जिसमें राजा-प्रजा, धनवान-दरिद्री किसी का भेद ही न रहे ! इस प्रकार के स्वर्गीय राज्य स्थापित करने का उसका यत्न कानून द्वारा संस्थापित राज्य के विरुद्ध विप्लव है।

एक कानून का आचार्य—अवश्य; और यही उपदेश क्या, उसकी सभी बातें कानून की दृष्टि से दंडनीय हैं।

दूसरा प्रजा-प्रतिनिधि—हाँ, संसार में निर्धन एवं दुखी ही अधिक हैं। और वे सब उसके साथ हैं क्योंकि वह स्वयं भी तो नंगा है।

चौथा प्रजा-प्रतिनिधि—आप लोगों ने सुना या नहीं, मुझे नहीं मालूम, किन्तु मैंने विश्वसनीय सूत्र से सुना है कि उसने हाल ही में अपने एक उपदेश में कहा था कि 'धनवान के स्वर्गीय राज्य में प्रवेश पाने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में से निकल जाना कहीं अधिक सरल है।'

बहुत से सभासद—हाँ, हाँ, सुना था, सुना था।

पहला प्रजा-प्रतिनिधि—धनवानों के साथ वह राज्य की भी तो जड़ काट देना चाहता है। राज्यकर तक न पटाने का उसने

उपदेश किया है। हाल ही में उसने कहा था कि 'जो सीज़र का है वह सीज़र को दो और जो ईश्वर का है वह ईश्वर को।' जिसका अर्थ ही यह होता है कि सीज़र को कुछ न दो।

दूसरा प्रजा प्रतिनिधि—सुना है उसने जरूसलम के नाश की भविष्य-वाणी भी की है।

तीसरा धर्माचार्य—और हमारे प्रधान-मंदिर के नाश की भी।

पाँचवाँ प्रजा प्रतिनिधि—इसी प्रकार की बातें सुन-सुनकर तो सभी निर्धन, दुःखी उसके साथ होगये हैं।

चौथा धर्माचार्य—बातें ही सुनकर क्यों? वह उनके लिए बहुत कुछ करता भी है।

पाँचवाँ धर्माचार्य—क्या करता है?

चौथा धर्माचार्य—भूखों के भोजन की व्यवस्था करता है। रोगियों की चिकित्सा करता है। सुना नहीं कि उसने अंधों, गूंगों और कोढ़ियों तक को अच्छा कर दिया है।

पाँचवाँ धर्माचार्य—अरे! ये सब व्यर्थ की बातें हैं। जन-समुदाय को अपनी ओर करने के लिए उसने ये झूठी कहानियाँ फैलवाई हैं।

चौथा धर्माचार्य—नहीं, नहीं, मेरे एक विश्वासपात्र मनुष्य ने स्वयं अपनी आँखों से उसका यह कार्य.....

कियाफा—(बीच ही में) जो कुछ भी हो, परन्तु इसमें संदेह

नहीं कि निर्धन और दुखी उसकी ओर हैं और उसके इन उपदेशों से हमारे धर्म को भारी भय है।

पहिला प्रजा प्रतिनिधि—राजसत्ता को भी कम भय नहीं है।

कियाफा—अवश्य, तब फिर किया क्या जावे ?

दूसरा कानून का आचार्य—कानून के अनुसार उसे मृत्युदंड दिया जा सकता है।

कियाफा—मृत्युदंड !

पहिला प्रजाप्रतिनिधि—यही उचित भी होगा। या तो मृत्यु-दंड सुनते ही उसका मस्तिष्क ठिकाने आ जावेगा, अपने स्वर्ग जाने की प्रत्यक्ष व्यवस्था देखते ही वह स्वर्गीय राज्य की स्थापना के स्वप्न को भूल जावेगा और अपना पथ छोड़ देगा, या मृत्युमुख में जायेगा।

दूसरा प्रजाप्रतिनिधि—हाँ दोनों ही परिस्थितियों में धर्म और राजसत्ता को कोई भय न रह जावेगा।

तीसरा प्रजाप्रतिनिधि—जहाँ वह बंदी हुआ वहाँ उसके सब साथी भी उसे छोड़कर भाग खड़े होंगे।

चौथा प्रजाप्रतिनिधि—इसमें क्या संदेह है ? सब के बड़ी बात तो यह होगी कि उसके बंदी होते ही किसी को यह विश्वास ही न रह जावेगा कि वह ईश्वर का पुत्र है।

पाँचवाँ प्रजाप्रतिनिधि—(मुस्कराकर) अवश्य, ईश्वर का पुत्र बंदी, थोड़े ही हो सकता है।

पहला प्रजाप्रतिनिधि—मूर्ख कहीं का ! ईश्वर का पुत्र बनता है। बंदी होते ही सारी कलई खुल जावेगी।

कियाफा—(चारों ओर देखकर) यहाँ प्रायः सभी धर्माचार्य, कानून के आचार्य और प्रजा प्रतिनिधि उपस्थित हैं। कहिए आप लोगों की क्या सम्मति है ?

पहला धर्माचार्य—उसने धर्म पर घोर कुठाराघात तो किया है। वह धार्मिक दृष्टि से मृत्यु का पात्र अवश्य है।

बहुत से धर्माचार्य--अवश्य, अवश्य।

पहिला प्रजाप्रतिनिधि—और राज-सत्ता उलट देने के लिए भी उसने कम आंदोलन नहीं किया, अतः राजकीय दृष्टि से भी उसे मृत्यु-दंड मिलना चाहिये।

बहुत से प्रजाप्रतिनिधि—अवश्य, अवश्य।

कियाफा—तो यह निर्णय होगया कि उसके मृत्युदंड की व्यवस्था की जाय ?

बहुत से सभासद—अवश्य, अवश्य।

चौथा धर्मगुरु—......किंतु...........

कियाफा—(जल्दी से) किंतु-परंतु का अब प्रश्न ही नहीं उठता। सभी उसके मृत्युदंड के संबंध में एक मत हैं। क्यों बंधुगण ?

बहुत से सभासद—निस्संदेह, निस्संदेह।

छठवाँ प्रजाप्रतिनिधि—आप लोगों को यह सुनकर हर्ष होगा कि

आप लोगों के इस निर्णय की पहले से ही कल्पना कर मैंने उसीके एक शिष्य यहूदी को ३० मुद्राओं पर इस बात के लिए ठीक कर लिया है कि वह उसे बंदी कराने में सहायता देगा।

कियाफा—(आश्चर्य से) केवल तीस मुद्राओं पर ?

छठवाँ प्रजाप्रतिनिधि—ईसा सदृश व्यक्तियों के जीवन का इससे अधिक और क्या मूल्य हो सकता है ! यह तो हम लोगों की क्षमा-वृत्ति के कारण वह इतनी खुराफ़ात मचा सका और अब उसके लिए तीस मुद्राएँ भी खर्च करनी पड़ रही हैं, नहीं तो जब उसने नेज़रथ में गड़बड़ मचाना आरम्भ किया था उस समय क्षणभर में बिना किसी प्रकार के व्यय के सारा खेल समाप्त किया जा सकता था।

पहला प्रजाप्रतिनिधि—सचमुच आपने बड़ा कार्य किया है।

कियाफा—इसमें क्या संदेह है।

बहुत से सभासद—अवश्य, अवश्य।

कियाफा—तो अब इस कार्य में विलंब न होना चाहिये इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि उसका मुकदमा पाण्टियस पाइ-लेट के पास ही जावे तथा पाइलेट से कहला देना चाहिये कि धर्म्माचार्यों, कानून के आचार्यों एवं प्रजा प्रतिनिधियों सब की यह सम्मति है कि ईसा को मृत्युदंड ही दिया जाय तथा तबतक उसे क्षमा न किया जाय जब तक वह अपना पथ छोड़ने का वचन न दे दे।

पहला कानून का आचार्य—यह सब व्यवस्था हो जायगी।

आकाश—ईसा को इन षड्यंत्रकारियों ने जिस प्रकार उसीके यहूदी शिष्य की सहायता से बंदी कराया और उस समय उनके सभी साथियों, यहाँ तक कि निकटतम शिष्य पीटर तक ने जिस प्रकार उनका साथ छोड़ दिया, उस सब का अब तुम्हें स्मरण आ गया होगा, प्रिये! पाण्टियस पाइलेट ने झूठी साक्षियों पर भी ईसा को जिस प्रकार प्राणदंड की आज्ञा दी वह भी कदाचित् तुम्हें स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु, हाँ, दुष्ट राजकर्मचारियों ने किस प्रकार ईसा का नीच अपमान किया और उस नीच अपमान को शांतिपूर्वक सहन कर ईसा ने अपने सिद्धांतों को छोड़ देने के पहले प्राणों तक को तुच्छ मान किस प्रकार मृत्यु का आलिंगन किया वह दृश्य तुम्हें अवश्य दिखाऊँगा।

[सामने अनेक सैनिकों के बीच में बंदी ईसा दिखाई देते हैं।]

एक सेनाध्यक्ष—(दूसरे सेनाध्यक्ष से) सूली पर चढ़ाने के लिए ले चलने के पूर्व स्वर्गीय राज्य के सम्राट् यहूदियों के इस राजा का उचित विधि से सम्मान तो कर दो।

दूसरा सेनाध्यक्ष—अवश्य, नहीं तो मरने के समय इसके मन में यह साध ही रह जायगी। मरने के पूर्व की इसकी सब इच्छाओं को यथासम्भव पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है।

पहला सेनाध्यक्ष—(एक सैनिक से) इसके लिए राज-मुकुट और चोगा आदि कुछ वस्तुएँ बनाने की मैंने तुम्हें आज्ञा दी थी, वे बन गईं ?

सैनिक—जी हाँ, तैयार हैं।

पहला सेनाध्यक्ष—कहाँ हैं ?

वही सैनिक—निकट ही रखी हैं, श्रीमान्।

पहला सेनाध्यक्ष—उन्हें शीघ्र ही ले आओ।

वही सैनिक—जो आज्ञा।

[दो सैनिकों के साथ वह सैनिक जाता है और शीघ्र ही काँटों के एक मुकुट, लाल रंग के एक, चोगे और लकड़ी के एक राजदंड के साथ तीनों सैनिक लौट आते हैं। इन वस्तुओं को देख दोनों सेनाध्यक्ष और सब सैनिक खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।]

पहिला सेनाध्यक्ष—अब स्वर्गीय राज्य के सम्राट् को सुसज्जित करो।

[ईसा को लाल चोगा पहनाया जाता है और उसके शिर पर कांटों का मुकुट लगा, हाथ में लकड़ी का राजदंड दिया जाता है। ईसा शांत रहते हैं।]

पहला सेनाध्यक्ष—(ईसा के सामने घुटने टेककर) हे स्वर्गीय राज्य के सम्राट्, हे यहूदियों के राजा, मैं आपका अभिवादन करता हूँ।

[फिर वह उठकर ईसा के मुख पर थूकता है। इसी प्रकार दूसरा सेनाध्यक्ष भी अभिवादन कर ईसा के मुख पर थूकता है। इतने पर भी ईसा विचलित नहीं होते।]

पहला सेनाध्यक्ष—(सैनिकों से) अच्छा, अब इसकी यह राजकीय पोशाक उतार लो और इसकी सूली का 'क्रास' इसी को दो। यही उसे ढोकर 'स्ट्रूइगस' द्वार से सूली के स्थान पर ले चलेगा।

[ईसा के हाथ से लकड़ी का राजदंड ले लिया जाता है। उसका काँटों का मुकुट और लाल चोगा उतार लिया जाता है। एक सैनिक जाता है और दो मजदूरों के सिर पर लकड़ी का 'क्रास' रखाकर लाता है।]

पहला सेनाध्यक्ष—(ईसा से) उठा, इस 'क्रास' को और ले चल अपने भाग्य-निर्णय के स्थान पर।

[ईसा चुपचाप, किन्तु कठिनाई से, 'क्रास' को उठाकर आगे बढ़ते हैं, पर बोझ के कारण उनसे शीघ्र नहीं चला जाता।]

पहला सेनाध्यक्ष—(ईसा को चाबुक मारते हुये) पैर टूट गये हैं, या मरने से भय लगता है! बड़ा साहसी बनता था, कायर कहीं का! यदि मरने से भय लगता है तो पहले ऐसे कर्म ही क्यों किये थे? भूल हो गई थी तो क्षमा माँग लेता।

[फिर वह चाबुक मारता है, किन्तु ईसा शांत-भाव से उसी प्रकार चलते जाते हैं।]

आकाश—दूसरों के उपकार के लिये मनुष्य इससे अधिक और क्या सहन कर सकता है, प्रिये? अब अंतिम झाँकी के

और दर्शन कर लो, दो साधारण चोरों के साथ यह महा-पुरुष भी सूली पर चढ़ा दिया गया था।

[सामने एक पहाड़ी टीले पर कुछ दूर तीन सूलियाँ दिखाई देती हैं। अस्त होते हुये सूर्य की किरणें उन पर पड़ रही हैं। धीरे-धीरे सूलियाँ निकट से दिखने लगती हैं। बीच की सूली पर ईसा टँगे हुये हैं। अनेक पथिक इधर-उधर खड़े हैं।]

एक—बीच वाला वह मनुष्य है जो अपने को मनुष्य और ईश्वर दोनों का पुत्र कहता था।

दूसरा—हाँ बीच वाला; बहुत से ऐसे ईश्वर के पुत्रों को देख लिया।

तीसरा—संसार का उद्धार करना चाहता था, पर अपना सूली से उद्धार न कर सका।

चौथा—अभी भी यदि यह सूली से उतर आवे तो मैं मान लूंगा कि यह ईश्वर का पुत्र है।

पाँचवाँ—इस प्रकार यदि लोग सूली से उतरने लगें तो फिर संसार का काम चल चुका।

छठा—चलो, चलो, अपना रास्ता लें व्यर्थ के लिए समय खोने से क्या लाभ ?

[उसी समय ईसा सूली पर कुछ छटपटाकर और जोर से चीख कर कहते हैं।]

ईसा—क्षमा ! भगवन् ! क्षमा। उन्हें क्षमा करना जिन्होंने मुझे

सूली पर चढ़ाया है। अज्ञान के कारण वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

आकाश—सूली पर चढ़ाने वालों के लिए भी क्षमा-प्रार्थना? त्याग की पराकाष्ठा है। अभी भी तुम क्या यही कहोगी कि मनुष्य अपने लिए अन्य को कष्ट दे रहा है? ईसा के इस अपूर्व त्याग से उनके अनुयायियों को जो स्फूर्ति मिली इसका भी तुम्हें अब स्मरण आ गया होगा? उनके अनुयायियों ने उनको जीवितावस्था में चाहे उन्हें धोखा दिया हो, किन्तु उनके इस त्याग ने उनमें नव-जीवन का संचार कर दिया। जीवित ईसा की अपेक्षा मृत ईसा कहीं अधिक शक्तिशाली हो गये। उनके अनुयायियों ने ईसा के धर्म का जिस प्रकार प्रचार किया उसकी अब तुम्हें स्मृति आ गई होगी। इस महान् कार्य में ईसा के आदर्श का अनुसरण कर उन्होंने भी अपने प्राणों को तुच्छ मान जिस असीम दृढ़ता का परिचय दिया उसका पूर्ण स्मरण दिलाने के लिए उसके भी कुछ दृश्य मैं तुम्हें दिखाता हूँ जिससे फिर तुम यह न कह सको कि सामूहिक रूप से मनुष्य अपने सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का अनुभव और उसके अनुरूप कर्म नहीं कर रहा है। यह देखो, ईसा के प्रधान शिष्य 'पीटर' और 'जान' को उनके धार्मिक प्रचार के कारण जरुसलम के सैनिक किस निर्दयता और क्रूरता से पीट रहे हैं। परन्तु इतने पर भी वे अपने सिद्धांतों पर अटल हैं।

[समाने जरूसलम के एक मैदान का दृश्य दिखता है। तीन ओर वहाँ के निवासियों का बड़ा भारी समुदाय दृष्टिगोचर होता है। बीच में सैनिकों से घिरे हुए पीटर और जान हैं। इन्हें दो सैनिक चाबुकों से पीट रहे हैं किन्तु वे पाषाण मूर्तियों के समान दृढ़ता एवं शांतिपूर्वक खड़े हुए हैं।]

आकाश—ईसाइयों के पहले शहीद स्टीफिन के साहस का अवलोकन करो। जरूसलम के निवासियों ने पत्थर मार-मार कर उसके प्राण ले लिये परन्तु अन्त तक वह अपने सिद्धांत पर अटल रहा।

[सामने उपर्युक्त प्रकार के मैदान में ही जन-समुदाय से घिरा हुआ स्टीफिन दिखता है। लोग उसे पत्थर मार रहे हैं।]

स्टीफिन—(हाथ जोड़कर आकाश की ओर ऊपर देखते हुए) हे ईश्वर ! मैं इस शरीर की तनिक भी चिंता नहीं करता। मेरी आत्मा शीघ्र ही तेरे चरणों में आ रही है। मरते-मरते मैं तुझसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरी हत्या का दोष इन अज्ञानियों के मस्तक पर न लगे। भगवन्! इन्हें क्षमा करना।

[स्टीफिन मरकर गिर पड़ता है।]

आकाश—अब जिसने ईसाई धर्म का सब से अधिक प्रचार किया उस पॉल को भी पत्थरों की कैसी भीषण वर्षा का सामना करना पड़ा उसका भी निरीक्षण करो।

[सामने उपर्युक्त प्रकार से ही पॉल पर पाषाण वर्षा का दृश्य दिखायी देता है; परंतु पॉल की मृत्यु नहीं होती ।]

आकाश—अकेले जरूसलम में ही ईसाइयों पर यह अमानुषिक अत्याचार हुए हों यह नहीं; तुम्हें मेरे यह कहते ही स्मरण आ गया होगा कि जैसे-जैसे ईसाई धर्म अन्य देशों में फैलता गया, वैसे-वैसे इन अत्याचारों का क्षेत्र भी बढ़ता गया। रोमक साम्राज्य के सम्राट् डिसियस ने ईसाई धर्म पर जिस प्रकार का व्यवस्थित दमन और अत्याचार आरंभ किया था वह तुम्हें विस्मृत न हुआ होगा ? इस दमन एवं अत्याचार के विरुद्ध ईसाइयों की कोई सुनाई नहीं थी । सम्राट् डिसियस और उसके पश्चात् सम्राट् डायोक्लीटियन के समय ईसाइयों की अगणित पुस्तकें जलाई गईं, उनकी संपत्ति का अपहरण किया गया। विद्रोही और विप्लवी घोषित कर उन्हें नाना प्रकार के शारीरिक कष्ट दिये गये । जिन अमानुषिक अत्याचारी प्रणालियों से उनके प्राण लिये जाते थे उनमें से केवल एक का दृश्य तुमको केवल इसलिए दिखा देता हूँ कि तुम्हें उन सभी प्रणालियों का स्मरण हो आवे। यह देखो जीवित अवस्था में ही एक ईसाई अग्नि पर भूना जा रहा है ।

[सामने एक जलती हुई भट्टी दृष्टिगोचर होती है। उसके दोनों ओर लोहे के चार छोटे-छोटे स्तंभ हैं जिनके सहारे भट्टी पर एक

छोटा सा लोहे का पुल बना हुआ है। उस पुल पर एक मनुष्य शरीर लोहे के तारों से बँधा है जिसका मांस और रुधिर गल-गलकर भट्टी में गिर रहा है और वह मनुष्य तड़प रहा है। भट्टी के तीन ओर जनसमुदाय दिखायी देता है।]

आकाश—स्मरण आया वह सब लोमहर्षण अत्याचार, प्राणेश्वरी ! तुम्हें याद होगा कि इस प्रकार का महान् कष्ट एक, दो, चार, दस, पच्चीस, पचास, सौ, दो सौ, नहीं सहस्रों ईसाइयों को सहना पड़ा था और उनका दोष क्या था ? ईसाने जिस स्वर्गीय राज्य की स्थापना का उपदेश दिया था उसका प्रचार।

पृथ्वी—ईसा पर तथा उनके शिष्यों पर किये गये दारुण अत्याचारों के दृश्य दिखाकर भी तुम यही कहते हो कि मनुष्य सामूहिक रूप से अपना मानसिक विकास कर रहा है !

आकाश—मैं यह कहाँ कहता हूँ कि मनुष्य का पूर्ण विकास हो चुका, मैं तो यही कहता हूँ कि सामूहिक रूप से वह विकास की ओर अग्रसर है। कुछ मनुष्यों ने अवश्य इस प्रकार के अत्याचार किये, किन्तु उसका फल क्या निकला ? अंत में अत्याचारियों का ही सिर झुका। जिस राजसत्ता ने इन अत्याचारों पर कमर कसी थी, उसी राजसत्ता ने आगे चलकर किस प्रकार सिर झुकाया उसका स्मरण दिलाने रोमक सम्राट् कान्स्टेन्टाइन के तुम्हें दर्शन कराता हूँ। यह

देखो कान्स्टेन्टाइन ईसाई धर्म की महत्ता एवं विशाल हृदयता को देखकर और यह मानकर कि विना इस ग्रहण किये मेरी गति ही संभव नहीं; मरने के पूर्व अपने बसाये हुए कान्स्टेन्टीनोपल के निकट एनकी रोना (Aneyrona) नामक स्थान पर एसीबियस (Ecibious) पादरी द्वारा ईसाई धर्म में दीक्षित हो रहे हैं।

[सामने एक साधारण भवन के कक्ष में पलंग पर रोगग्रस्त सम्राट् कान्स्टेन्टाइन अनेक दासों के सहारे बैठे हुए हैं। पलंग के पीछे राज-कर्मचारी आदि खड़े हैं और सामने एसीसियस पादरी अनेक पादरियों के साथ खड़े हुए कान्स्टेन्टाइन को ईसाई धर्म की दीक्षा (वपतिस्मा) देने का धार्मिक संस्कार कर रहे हैं। कान्स्टेन्टाइन खुले सिर श्वेत दुपट्टा ओढ़े हुए हैं। उनके दास गले से पैर तक श्वेत चोगे पहने हैं। शिर पर टोपियाँ लगाये हैं। राजकर्मचारी विविधि रंगों के सुनहरी काम वाले चोगे धारण किये हैं और ऊँची टोपियाँ लगाये हैं।]

कान्स्टेन्टाइन—(संस्कार पूर्ण होने पर मंद स्वर से अटक-अटककर) अब मैं सहर्ष मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हूँ, क्योंकि मुझे विश्वास हो गया कि न्याय के दिन ईश्वर के पुत्र के सहारे मैं भी सद्गति को प्राप्त होऊँगा। मैंने अपने को ईसाई धर्म में दीक्षित कर केवल अपना ही उद्धार नहीं किया है, किन्तु मेरे पूर्व जितने सम्राटों ने ईसाइयों पर अत्याचार किये हैं उन सब के पापों का भी एक प्रकार से प्रायश्चित्त कर

दिया है। आज से ईसाई धर्म रोमक साम्राज्य का राजधर्म हुआ। मेरी अंतिम इच्छा यही है कि संसार भर में ईसाई धर्म का प्रचार हो, बड़े-बड़े गिरजे बनाये जावें, जो अपना सर्वस्व त्याग कर धर्म की सेवा के लिए भिक्षु-भिक्षुणी हो गये हैं उनके निवासार्थ राज्य भर में बड़े बड़े मठ बनें।

[कान्स्टेन्टाइन धीरे-धीरे लेट जाते हैं।]

आकाश—सम्राट् कान्स्टेन्टाइन की अंतिम इच्छा पूर्ति के लिए जिस प्रकार का महाप्रयत्न हुआ, रोम के प्रधान पादरी 'पोप' के नाम से जिस प्रकार समस्त संसार में विख्यात हुए, इसका तुम्हें स्मरण आगया होगा। पोप की सत्ता तो सम्राट् की सत्ता से भी अधिक हो गई थी। प्रजा को यदि कोई राजा किसी प्रकार का धार्मिक कष्ट देता तो पोप को अधिकार था कि वह उसे राज्यच्युत कर दे। पोप ही राजा का राज्यभिषेक कर सकता था। रोम का महा गिरजा 'सेन्ट पीटर' और पोप के विशाल भवन 'वेटिकन' आशा है; तुम अपनी अगणित वस्तुओं में से न भूली होगी? यह देखो यह वहाँ का गिरजा है, जहाँ भगवान् की प्रार्थना कर मनुष्य अपने अंतःकरणों को शुद्ध करते हैं।

[सामने दूर पर रोम का विशाल गिरजा 'सेन्ट पीटर' दिखता है। शनैः-शनैः वह निकट से दिखने लगता है। फिर उसका भीतरी भाग• दृष्टिगोचर होता है।]

आकाश—अब पोप के निवास-स्थान 'वेटीकन' का अवलोकन करो, जहाँ से दीन दुखियों की सेवा होती है।

[सामने कुछ दूर पर एक पहाड़ी पर 'वेटीकन-भवन' दिखता है। धीरे-धीरे वह पास से दिखता है। फिर एक एक कर उसके भीतर के कुछ भाग दिखायी देते हैं।]

पृथ्वी—परंतु अंत में ईसाई धर्म की भी वही दशा हुई जो बौद्ध-धर्म की हुई थी। ईसाई धर्म का पतन तो कदाचित् बौद्ध-धर्म से भी अधिक हुआ। ईसा ने शैतान के इतने ललचाने पर भी जिन आधिभौतिक सुखों को ठोकर मार दी थी उन्हीं आधिभौतिक सुखों में ईसाइयों के प्रधान धर्म गुरु पोप महोदय किस प्रकार लिप्त हो गये, इनकी पूर्ति के लिए भोले भाले धर्मभीरु जन-समुदाय को उन्होंने किन कुत्सित उपायों से लूटा और अपने अधिकारों का किस प्रकार महा दुरुपयोग किया यह सब तुम कदाचित् भूल ही जाना चाहते हो? तुमने मुझे ईसाइयों के त्याग के अनेक दृश्य दिखाये हैं, मैं तुम्हें उनके राग के कुछ दृश्य दिखाना चाहती हूँ। कान्स्टेन्टाइन के लगभग पाँच सौ वर्ष पश्चात् 'पवित्र' रोमन साम्राज्य के नाम से जो एक राज्य स्थापित हुआ था उस 'पवित्र' साम्राज्य के 'पवित्र' पोप महाशय का एक भोज तथा नृत्य देखो, और देखो कि जिस 'वेटिकन' भवन से दीन-दुखियों की सेवा होती थी उसी में

किस प्रकार राग-रंग होकर मदिरा की नदियाँ बह रही हैं; यह भी देखो कि धर्मभीरु मनुष्यों का धर्मार्थ दिया हुआ धन किसी प्रकार के सत्-कार्य में व्यय न होकर किस प्रकार के भोग विलासों में खर्च हो रहा है।

[सामने पुनः 'वेटीकन' दृष्टिगोचर होता है। शनैः शनैः उसका विशाल भोजनालय दिखता है। संगमर्मर के कामदार स्थूल स्तंभों पर नोकदार महराबें हैं जिन पर भोजनालय की छत है। कक्ष की छत और भित्तियाँ सुन्दर रंगों से रंजित हैं। भित्तियों में बड़े-बड़े शीशे और चित्र लगे हैं। छत से मोमबत्तियों वाले भारी झाड़ झूल रहे हैं। ज़मीन पर गलीचा है जिस पर भोज के लिये श्वेत कपड़े से ढकी हुई लंबी टेबिलें सजी हैं और इनके दोनों ओर गद्दीदार सुंदर कुर्सियाँ हैं। टेबिलों पर अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ तथा मदिरायें सजी हुई हैं। बीच-बीच में पुष्पों से भरे फूलदान रखे हैं। कुर्सियों पर स्त्री और पुरुष दोनों ही बैठे हुये भोजन कर रहे हैं। स्त्री-पुरुष दोनों की वेषभूषा अत्यंत भड़कीली है। दोनों गले से पैर तक रंग बिरंगे सुनहरी काम के चोगे पहने हैं। स्त्रियों के चोगे कमर पर कमरपेटी से बहुत कस कर बंधे हैं। जिससे उनकी कमर बहुत पतली जान पड़ती है। स्त्री-पुरुष दोनों के चोगों की बाहें खूब ढीली हैं। स्त्रियाँ सिर पर छोटी-छोटी मुकुटों के सदृश टोपियाँ लगाये हैं। पुरुष खुले सिर हैं। हजारों मोम बत्तियाँ झाड़ों में जल रही हैं। जिससे सारा कक्ष जगमगा रहा है। शनैः-शनैः यह दृश्य

परिवर्तित होकर नृत्यालय दृष्टिगोचर होता है। विस्तृत होने पर भी इस कक्ष में स्तंभ नहीं हैं। भित्ति के सहारे तीन ओर गद्दीदार सोफे और कुर्सियाँ रखी हैं। इनके आगे टेबिलें रखी हैं जिन पर पुष्पों से भरे हुए फूलदान और मदिरायें सजी हैं। कक्ष के बीच में श्वेत बिछावन तान कर बिछाई गई है जिस पर स्त्री-पुरुष नृत्य कर रहे हैं। वेष-भूषा भोजन समय के सदृश ही है। केवल हाथ के मोजे और धारण कर लिये गये हैं। वाद्य भी बज रहा है। सहस्त्रों मोमबत्तियों के प्रकाश से कक्ष में दिन का सा उजाला हो रहा है।]

पृथ्वी—पोप ने इतना ही नहीं किया। ईसाई धर्म के नाम पर उन्होंने जितना रक्तपात कराया उतना कदाचित् अब तक किसी भी धर्म के नाम पर नहीं हुआ है। ईसा के लगभग एक सहस्त्र वर्ष पश्चात् जरूसलम को अपने अधिकार में रखने के लिये उन्होंने इस्लाम धर्मावलंबियों के साथ 'क्रूसेड' नामक धर्म युद्ध के नाम से जो सात घोर युद्ध किये थे वे तुम्हें स्मरण होंगे। इन युद्धों की विशेषता को भी आशा है तुम न भूले होगे। यह विशेषता थी इन युद्धों में अधिकतर सेना का भाग न लेना और साथ ही प्रायः पोप महाशय, सम्राट् तथा धनी मानियों का अपने अपने स्थानों में सुखपूर्वक बैठे रहना पर बेचारी सर्व साधारण प्रजा का पोप की आज्ञा मानकर धर्म रक्षा के लिए अपना तथा पराजितों का रक्त बहाना। जरूसलम में पहले धर्मयुद्ध

के रक्त की जो नदियाँ बही थीं उन्हें चाहे तुम भूल गये हो, क्योंकि तुम तो ऊपर से उस दृष्य को केवल देखते थे, परन्तु मैं कैसे भूल सकती हूँ? मेरा शरीर तो उस रुधिर से ऐसा लाल हो गया था कि वर्षों वह लाली न गई। अरे! चौथे युद्ध में तो धर्म के नाम पर सहस्त्रों छोटे छोटे बच्चे लड़ने के लिये गये थे, जा समस्त संसार के इतिहास में एक अभूत-पूर्व घटना है। इन दुधमुहे बच्चों के रक्तपात का जब मुझे स्मरण आता है तब तो मैं आज भी काँप उठतीं हूँ। इन सात युद्धों में से मैं केवल बच्चों का युद्ध-प्रस्थान तुम्हें दिखाती हूं, जिससे यदि तुम वह हृदय विदारक घटना भूल गये हो तो तुम्हें उसकी स्मृति आजावे।

[सामने पंद्रह, सोलह बर्ष की अवस्था वाले सहस्त्रों लड़कों के झुंड का प्रस्थान दृष्टिगोचर होता है। सब भिन्न भिन्न रंगों के कोट और पाजामे पहने हैं। सिर पर टोपियाँ लगाए हैं और हाथों में विविध प्रकार के शस्त्र लिए हैं। 'ईश्वर के पुत्र की जय', 'महात्मा ईसा की जय', 'धर्म्म की जय' इत्यादि शब्द सुनाई देते हैं।]

पृथ्वी—इन बच्चों का जिस भीषणता से रक्त, बहा है, उस दृश्य को दिखाने का तो मेरा आज भी साहस नहीं होता। फिर अनेक बार दो व्यक्ति अपने को पोप कह कर आपस में ही लड़ते थे और इन कलहों में न जाने कितना रक्तपात होता,

आकाश—(बीच ही में) मुझे स्मरण है, प्रिये, कि उन दिनों में कुछ समय तक ईसाई-धर्म्म पतित हो गया था, किन्तु उत्थान का पुनः प्रयत्न हुआ जर्मनी देश में लूथर ने जन्म लेकर ईसाई धर्म के उत्थान का फिर से जो प्रयत्न किया उसे क्या तुम भूल गईं ?

पृथ्वी—स्मरण है, प्राणेश, लूथर के प्रयत्न का भी स्मरण है। उनके प्रयत्न से पतन का थोड़ा सा अवरोध हुआ यह भी मैं मानती हूँ, परन्तु उनके अनुयायी सुधारकों ने इस सुधार के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया वे भी तुम्हें स्मरण हैं ? ईसा के पश्चात् सहस्त्रों ईसाइयों ने अपने धर्म पर अटल रहने के लिए आततायियों के अत्याचारों को जिस प्रकार सहन किया था, लूथर के अनुयायियों ने उसी प्रकार के अत्याचार अपने सहस्त्रों विरोधियों पर कर स्वयं आततायियों का स्थान ले लिया था। जरूसलम तथा रोम आदि के निवासियों द्वारा ईसाइयों पर किये गये अत्याचारों के दृश्य तुमने मुझे दिखाये थे यदि तुम उन्हीं दृश्यों को परिवर्तित कर अत्याचार करने वाले के स्थान पर ईसाइयों को रख लो तो तुम्हें इस काल के अमानुषिक अत्याचारों का स्मरण आ जावेगा। इसीलिये मैं ये दृश्य तुम्हें नहीं दिखाती। फिर जिस जर्मनी में लूथर ने जन्म लिया था उसी जर्मनी ने सन् १९१४ में ईसाई धर्म

का किस प्रकार अनुसरण किया ? आज वही जर्मनी उसका किस प्रकार अनुसरण कर रहा है ? जिन ईसाइयों को ईसा ने यह उपदेश दिया था कि यदि कोई दाहने गाल पर चपत मारे तो दूसरा गाल भी उसके संमुख कर दो, वे ईसाई ईसा के १६१४ वर्ष पश्चात् परस्पर किस प्रकार लड़े तथा आज किस प्रकार लड़ रहे हैं यों तो गिनती के मनुष्यों को छोड़ अपने को ईसाई कहने वाले सभी ईसाई सदा ही ईसा के उपदेशों के विरुद्ध चलते रहे हैं, किन्तु इन संग्रामों में तो उन्होंने अपने पतन की पराकाष्ठा दिखा दी। तुम कहते हो न कि वैज्ञानिक साधनों को मनुष्य संसार को सामूहिक सुख देने के लिए उत्पन्न कर रहा है, कितु उन वैज्ञानिक साधनों का उसने संसार को नष्ट करने के लिए किस प्रकार उपयोग किया और कर रहा है वह भी मैं तुमको अवश्य दिखाऊँगी, जिससे उन दारुण घटनाओं का तुम्हारे मन में पूरा चित्र खिंच जावे और तुम यह मान लो कि सृष्टि उत्थान की ओर नहीं, किन्तु घोर अधःपतन की ओर जा रही है। यह देखो यह जर्मनी का वह तोपखाना है जिसकी तोपों के गोले डेढ़-डेढ़ मील लंबी मार करते थे।

[सामने तोपखाना दृष्टिगोचर होता है ।]

पृथ्वी—और ये जर्मनी की वे बंदूकें हैं जो एक मिनिट में सैकड़ों

गोलियाँ दाग सकती थीं। ये गोलियाँ भी मीलों दूर तक जाती थीं।

[सामने सैनिकों के शिविर के सामने तीन-तीन बंदूकों के समूह की लंबी पंक्ति दृष्टिगोचर होती है।]

पृथ्वी—अब मैं तुम्हें स्थल, जल और वायु सेनाएँ भी दिखाती हूँ जो इस घोर हत्याकांड की साधन हैं।

[पहले बैंड के साथ पैदल सेना का, तदुपरांत तोपखानों और ट्रैंकों का कूच दिखता है। सेनाएँ आधुनिक समय के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की वरदियाँ पहने हुए हैं। दृश्य परिवर्तित हो समुद्र में लड़ाई के जहाज दिखायी देते हैं फिर एक जहाज निकट से दिखकर उसके भीतर के भी कुछ भाग दिखते हैं। तदुपरांत अनेक 'टारपीडो' और 'सबमरीन' नावों के समूह तथा 'मॉइन्स' दिख पड़ते हैं। इनमें से एक-एक नावें निकट से दिखती हैं और इनके भीतरी भाग भी दिखायी देते हैं। यह दृश्य भी परिवर्तित हो 'एरोड्रोम' (वायुयान-स्टेशन) दिखायी देता है। उसमें वायुयानों का समूह दिखता है। एक वायुयान निकट से दिखता है और उसके भीतरी भाग भी दिखायी देते हैं। इसके उपरांत अनेक वायुयान आकाश में उड़ते हुये दिखायी देते हैं इनमें से पैराशूट उतरते हैं।]

पृथ्वी—अब उस भीषण युद्ध का भी अवलोकन करो। स्थल जल और वायु सभी प्रकार के युद्ध देखो।

[सामने दूर पर युद्धक्षेत्र दिखायी देता है। धीरे-धीरे सैनिकों के

खड़े होने की खाइयाँ दिखती हैं। फिर युद्ध दृष्टिगोचर होता है। तोपों की मार, तदुपरांत बंदूकों की मार फिर सेनाओं का आगे बढ़ना तथा पीछे हटना और सैनिकों का मरना एवं घायल होना इत्यादि युद्ध के सभी दृश्य दीख पड़ते हैं। शनैः-शनैः दृश्य परिवर्तित होकर समुद्र में जहाज़ों की लड़ाई उनसे तोपों-बंदूकों आदि की मार तथा उनका डूबना इत्यादि जल युद्ध के अनेक दृश्य दिखाई देते हैं फिर वायु-युद्ध दृष्टिगोचर होता है। सैनिकों की वेशभूषा आधुनिक काल के अनुसार है।]

पृथ्वी—तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस युद्ध में केवल लड़ने वाली सेनाओं का ही नाश नहीं हो रहा है किन्तु वायु-यानों ने बम बरसा-बरसाकर नगर के नगर और ग्राम के ग्राम चौपट कर रहे हैं। इस प्रकार सहस्रों निर्दोष मनुष्यों और उनकी संपत्ति का संहार हो रहा है। यह देखो वायुयान बम बरसा रहे हैं।

[सामने आकाश पर वायुयान मँडराते हुए दिखते हैं। उनसे बम गिरते हैं और नीचे नगरों और ग्रामों के घर टूट-टूट कर गिरते और जलते हुए दिखायी देते हैं। उनके निवासी, जिनमें स्त्रियाँ और छोटे-छोटे बच्चे भी हैं, चिल्लाते और भागते हुये दिख पड़ते हैं। इन सब की वेशभूषा वर्तमान समय की है परन्तु अधिकांश व्यक्ति आधे ही वस्त्र पहने हैं।]

पृथ्वी—अरे! इस समय यात्रियों की यात्रा तक सुरक्षित नहीं

है। अनेक जहाज़, जिनसे युद्ध का कोई संबंध नहीं, 'सब-मरीनों' और 'माइंस' द्वारा डुबाये जारहे हैं। देखो एक जहाज़ डूब रहा है और उसके यात्री कितने विकल हैं।

[सामने जहाज़ डूबने का दृश्य दिख पड़ता है। उसके यात्रियों की कारुणिक विकलता दृष्टिगोचर होती है। इन सब की वेषभूषा भी उपर्युक्त व्यक्तियों की वेषभूषा के सदृश ही है।]

पृथ्वी—यह सब आज हो रहा है, आज। इतने पर भी मनुष्य कहता है कि यह सारा हत्याकांड उसने अन्याय का दमन और न्याय की विजय करने के लिए किया है और कर रहा है। क्या अभी भी तुम यही कहोगे कि मनुष्य सृष्टि की एकता के ज्ञान का अनुभव कर उसके अनुसार कर्म कर रहा है, वह प्रेम द्वारा सृष्टि को सुखी करने के प्रयत्न में है? अभी भी क्या तुम्हारा यही विश्वास है, अंतरिक्ष, कि सृष्टि विकास के पथ से उन्नति की ओर जा रही है?

आकाश—(पृथ्वी के पास आ उसका आलिंगन करते और मुख चूमते तथा मुस्कराते हुए) अवश्य, रत्नगर्भा।

पृथ्वी—(कुछ आश्चर्य से) यह कैसे?

आकाश—देखो, प्रिये, मैंने तुम से कहा ही है कि हर वस्तु के पृथक्-पृथक् देखने से उन्नति और अवनति दोनों ही दीख पड़ती हैं परन्तु सामूहिक दृष्टि से सृष्टि उन्नति की ओर ही अग्रसर है। बौद्धमत के समान ईसाई-धर्म का कार्य समाप्त

हो जाने पर उसका भी पतन हो गया, किन्तु सामूहिक रूप से सृष्टि की उन्नति न रुक जाय इसलिए तुम्हारे भारत देश में महात्मा गांधी ने जन्म लिया है। यह देखकर कि केवल धर्म-प्रचार से मानव समाज अपने ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं कर सकता, केवल इतने ही से प्रेम का साम्राज्य और अहिंसा की स्थापना नहीं हो सकती, उन्होंने राजनीति में भी प्रेम और अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है। इस समय जिस प्रकार का मानव-संहार हो रहा है उसके लिए राजनीति उत्तरदायी है। महात्मा गांधी ने उसी का सुधार आरम्भ कर दिया है। फिर गांधी के कार्यक्रम में एक और विशेषता है।

पृथ्वी—वह क्या ?

आकाश—तुम्हींने अभी कहा था न कि मनुष्य कहता है कि उसने यह घोर युद्ध भी अन्याय का दमन और न्याय की विजय के लिए ही किया है ?

पृथ्वी—हाँ, कहता तो वह यही है।

आकाश—नहीं, प्राणाधिके, यह केवल कहने की ही बात नहीं है। न्याय ने अन्याय को पाशविक बल के उपयोग से ही जीता है। गांधी ने अन्याय पर विजय प्राप्त करने के लिए एक नवीन मार्ग 'सत्याग्रह' का अनुसंधान किया है। इसमें पाशविक बल नहीं, किन्तु आत्मिक बल की आवश्यकता है।

संसार के अब तक के इतिहास से यही सिद्ध होता है कि जो आज अपने को न्यायशाली कह पाशविक बल का उपयोग कर अन्यायियों का दमन करते हैं वे स्वयं समय पाकर अन्यायी हो जाते हैं। गांधी के मार्ग में यह बात हो ही नहीं सकती। गांधी से संबंध रखने वाले दृश्य अत्यंत नवीन हैं, अतः उनके स्वरूप का स्मरण-मात्र दिलाकर उनसे संबंध रखने वाले दृश्य दिखा तुम्हारा समय मैं व्यर्थ के लिए नष्ट नहीं करना चाहता।

[एकाएक अँधेरा हो जाता है । थोड़ी देर में पुनः प्रकाश फैलता है ।]

स्थान—वही समय—वही

[आकाश और पृथ्वी पीछे की ओर मुख किये खड़े हैं। उनके सामने का स्थान पहले के सामान ही शून्य है। पहले दूर से और फिर पास से महात्मा गांधी का विशाल चित्र दिखता है। एकाएक अँधेरा हो जाता है और धीरे-धीरे फिर प्रकाश फैलता है।]

पृथ्वी—परन्तु गांधी के प्रयत्नों का अब तक क्या फल निकला ?

आकाश—गांधी के कार्यों का क्या फल निकला, इसका निर्णय आज नहीं हो सकता। भविष्य इसका निर्णय करेगा। हम लोग भूत और वर्तमान का ही ज्ञान रखते हैं, उस ज्ञान पर स भविष्य में क्या होगा, इसकी कल्पना कर सकते हैं।

भविष्य का सच्चा और पूर्ण ज्ञान तो उसी शक्ति के पास है जिसके द्वारा इस समस्त सृष्टि, अनंत सूर्य, चंद्र, नक्षत्र और भूमण्डल संचालित हो रहे हैं। कोई इस महा शक्ति को 'शक्ति' कहते हैं, कोई ईश्वर, कोई इसे चैतन्य मानते हैं, कोई जड़। आज तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सृष्टि को पुनः उत्थान की ओर अग्रसर करने के लिए महात्मा गांधी का जन्म और उनके कार्य का आरंभ हो गया है। भूत में जो कुछ हुआ है तथा इस समय जो कुछ हो रहा है उससे तो यही सिद्ध होता है कि सामूहिक रूप से सृष्टि विकास के पथ से उन्नति की ओर ही अग्रसर है। इसमें संदेह नहीं कि बीच-बीच में इस उन्नति के अवरोध होते हैं। किन्तु ये अवरोध सृष्टि की रचना से ही हो रहे हैं तुमने कहा कि जब तुम्हारी सृष्टि में सर्वप्रथम चेतन जीव सृष्टि का मत्स्य रूप से प्रादुर्भाव हुआ, तब उसे नष्ट करने के लिए राक्षस भी उत्पन्न हुआ था, किंतु इन अवरोधों का यह अर्थ नहीं है कि अवनति का आरम्भ हो गया है, वरन् ये अवरोध उल्टे उन्नति के पोषक हैं। वेग की तीव्रता के लिए अवरोध आवश्यक होते हैं। जिस प्रकार चट्टानों के अवरोध से नदी का प्रवाह और भी तीव्रता धारण करता है, उसी प्रकार बीच बीच में अवनति होने से उन्नति के प्रवाह की गति बढ़ती है। इस समस्त वाद-विवाद और भूत तथा वर्तमान के दृश्यों का

अवलोकन कर हमने देख लिया कि जब-जब पतन हुआ तभी उन्नति का नवीन प्रकार से आरम्भ हुआ है।

[एकाएक अँधेरा हो जाता है। थोड़ी देर पश्चात् पुनः प्रकाश फैलता है।]

स्थान—वही समय—वही

[आकाश और पृथ्वी एक दूसरे का आलिंगन किये हुए सामने की ओर मुख किये खड़े हैं। उनके पीछे का दृश्य अब शून्य नहीं है। जिस प्रकार उनके प्रकट होते समय क्षितिज का मनोहर दृश्य था, उसी प्रकार फिर दिख पड़ता है।]

आकाश—कहो, बुद्धिमती इला, अब तो तुम मानती हो न, कि सृष्टि विकास के पथ से उन्नति की ओर ही अग्रसर है ?

पृथ्वी—(मुस्कराते हुए) नहीं, अन्तरिक्ष।

आकाश—(आश्चर्य से) यह क्यों, प्रिये ?

पृथ्वी—देखो, प्रियतम, जो कुछ तुमने मुझ से कहा, वह सब मैंने बड़े ध्यान से सुना और जो कुछ तुमने मुझे दिखाया वह सब मैंने बड़े ध्यान से देखा है। अनेक भूली हुई बातें भी मुझे आज अच्छी प्रकार स्मरण हो आई हैं और अब तो मुझे अपने मत की सत्यता पर और भी अधिक विश्वास हो गया कि समस्त सृष्टि चक्रवत् घूम रही है तथा इस समय सृष्टि पतन की ओर ही अग्रसर है।

आकाश—किस प्रकार, प्राणेश्वरी ?

पृथ्वी—मनुष्य ने जो कुछ आज सहस्त्रों वर्ष पूर्व जान लिया था, अर्थात् सृष्टि की एकता, उससे अधिक न तो वह कुछ जान आया और न सामूहिक रूप से इस ज्ञान का अनुभव कर इसके अनुसार वह अपने कर्म बना सका। तुम जानते हो कि यह ज्ञान सर्वप्रथम भारतवर्ष में वैदिक काल के ऋषि महर्षियों को हुआ था। उन्होंने वेदान्त में 'अद्वैत' के नाम से इसका प्रतिपादन किया था। इस ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य मनुष्य को ही बंधु मानकर उसके हित में दत्तचित्त रहे, वैदिक ऋषियों का इतना ही कथन न था। उन्होंने तो इनसे भी कहीं बढ़ कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्'' कह समस्त सृष्टि को अपना कुटुम्ब मानने और 'सर्वभूत हितेरतः' कहकर समस्त योनियों के उपकार में दत्तचित्त रहने को कहा था। आचार में 'अभेद' रहने का उन्होंने उपदेश दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने इस 'अभेद' आचार धर्म का निष्काम होकर पालन करने की आज्ञा दे इसे और भी ऊँचा उठा दिया था। वैदिक महर्षियों के 'अद्वैत' का प्रतिपादन बुद्ध और ईसा के ज्ञान प्रतिपादन की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इसी प्रकार भगवद्गीता के आचार धर्म का उपदेश बुद्ध और ईसा के आचार धर्म के उपदेश से कहीं बढ़कर है। किन्तु बिरले मनुष्यों को छोड़ शेष जन-समुदाय ने न कभी पूर्व इस ज्ञान का अनुभव कर इस आचार धर्म का पालन किया

और न आज वह इस ज्ञान का अनुभव कर इस आचार धर्म पर चल रहा है। हाँ, शब्दों में सभी एकता, विश्वप्रेम और विश्व-बंधुत्व की दुहाई देते हैं। बिना एकता का अनुभव और उसके अनुरूप कर्म किये, जो आधिभौतिक उन्नति हो रही है, उससे कितना नाश हो चुका है और हो रहा है यह मैंने तुम्हें आज के ही कुछ दृश्य दिखाकर सिद्ध कर दिया है। भविष्य में इस आधिभौतिक उन्नति से और भी अधिक नाश की सम्भावना है। उत्थान के जिन दृश्यों को तुमने मुझे दिखाया है उनमें बुद्ध और ईसा के उद्योगों ने पतन के वेग का अवरोध मात्र किया है और तुमने कहा ही कि अवरोध से वेग उलटा बढ़ता है। बुद्ध और ईसा के पश्चात् पतन की उत्तरोत्तर तीव्रगति से तुम्हारे इस मत का समर्थन भी होता है। तुम्हीं कहते हो कि गांधी के कार्यों का क्या फल निकलता है? यह आज नहीं कहा जा सकता, किन्तु तुम्हारे कथनानुसार यदि भविष्य में वही होता है जो भूत में हो चुका है, और मैं भी तुम्हारा यह मत मानती हूँ, तो गांधी के प्रयत्न भी बुद्ध और ईसा के प्रयत्नों के सदृश अंत में इस पतन की गति को तीव्र ही करेंगे।

आकाश—परंतु, प्रिये, मनुष्य की उत्पत्ति को अभी कुछ लाख वर्ष ही हुए हैं। सृष्टि के जीवन में ये कुछ लाख वर्ष निमिष मात्र से अधिक नहीं हैं। यदि मनुष्य सामूहिक रूप से अब

तक अपने इस ज्ञान का अनुभव नहीं कर सका और अपने कर्मों को अपने ज्ञान के अनुरूप नहीं बना सका, तो इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि भविष्य में भी वह इसे न कर सकेगा। उसकी उन्नति को रोकने के लिए जितना अधिक अवरोध होगा, उसकी उन्नति का वेग उतना ही अधिक बढ़ेगा। अनेक बुद्ध, ईसा और गांधियों को अभी जन्म लेना पड़ेगा।

पृथ्वी—यह केवल कल्पना-संसार है।

आकाश—कल्पना ही तो निर्माण की जननी है। जो कुछ अभी तक निर्माण हुआ है वह यथार्थ में कल्पना का ही परिणाम है। मनुष्य में कल्पना करने की सब से अधिक शक्ति है, इसीलिए तो वह तुम्हारी सृष्टि की सब से श्रेष्ठ योनि है। तुम्हारे समुद्र में जो बड़े-बड़े जलयान आज बिना पतवारों के चल रहे हैं। तुम्हारी भूमि पर जो बड़ी-बड़ी रेलें और मोटरें बिना जीवशक्ति के दौड़ रही हैं। तुम्हारे ऊपर जो बड़े-बड़े वायुयान बिना स्वाभाविक पंखों के उड़ रहे हैं इनकी कल्पना इनके निर्माण के छै सौ वर्ष पूर्व तुम्हारी पश्चिम दिशा में रहने वाले 'रोजर बेकन' नामक एक महापुरुष ने की थी। उस समय इन सब आविष्कारों का चिह्न तक न था। क्या कोई उस समय विश्वास कर सकता था कि रोजर की ये कल्पनाएँ कभी निर्माण का रूप ग्रहण कर सकेंगी। भविष्य में मनुष्य सामूहिक रूप से एकता के ज्ञान का अनुभव कर इन आधि-

भौतिक साधनों द्वारा अनंत भूमंडलों से संबंध स्थापित करके इन सब साधनों का समस्त सृष्टि के सुखार्थ उपयोग करेगा। यह कल्पना भी सत्य न होगी इसे कौन कह सकता है?

पृथ्वी—यह कल्पना सत्य हो ही नहीं सकती।

आकाश—क्यों?

पृथ्वी—क्योंकि मनुष्य में पाशविकता उसका नैसर्गिक दुर्गुण है। या तो सृष्टि मनुष्य से बढ़कर कोई प्राणी उत्पन्न करे तब वह उन्नति की ओर बढ़ सकती है, या उसका पतन अवश्यंभावी है। परन्तु मेरा तो विश्वास है कि वह मनुष्य से बढ़कर कोई प्राणी उत्पन्न कर ही नहीं सकती, क्योंकि चक्रवत् घूमना उसका नियम है। इस समय उसका पतन हो रहा है। पूर्ण पतन होने के पश्चात् फिर उत्थान होगा। सृष्टि चक्रवत् घूम रही है, अवश्य चक्रवत् घूम रही है।

आकाश—नहीं, प्राणेश्वरी, विकास मार्ग द्वारा उत्थान ही उसका नियम है। उसका उत्थान हो रहा है, अवश्य उत्थान हो रहा है।

पृथ्वी—मैं इसे नहीं मानती।

आकाश—और मैं तुम्हारा मत नहीं मानता।

पृथ्वी—(आकाश का और भी दृढ़ालिंगन कर मुस्कुराते हुए) तो इस विषय में हम दोनों का मत-भेद ही सही। सदा यह मत-भेद रहा है और भविष्य में भी रहेगा।

(फिर अपना गायन गाती है)

पृथ्वी—अहो ! यह प्रकृति बाल छबिमान
सतत नियति से निश्चित इसका पतन और उत्थान
मुरझा मुँदते नयन युग, सह दुख झंझावात
खिलखिल हँस उठते कभी, लख सुख स्वर्ण प्रभात
इसी क्रम से यह रोदन गान
करता प्रकृति बाल छबिमान

(आकाश पृथ्वी का मुख चूम अपना गायन गाता है)

आकाश—शैशव को अतिक्रांत कर चढ़ विकास सोपान
गान उच्चतम शिखर को प्रकृति नित्यगति मान
गान में क्यों रोदन का भान ?
अहो ! यह प्रकृति बाल छबिमान।

[दोनों-गाते गाते क्षितिज पर चढ़ जाते हैं। शनैः-शनैः आकाश का मनुष्य शरीर ऊपर चढ़कर लुप्त हो जाता है और पृथ्वी का नीचे जाकर। एकाएक अँधेरा हो जाता है। पुनः प्रकाश फैलता है और आरम्भ में जो शयनागर दिखा था वह दिखाई देता है। युवक युवती दोनों अभी भी अपने-अपने पलँग पर सोये हुए हैं। एकाएक युवक उठकर बैठ जाता है और आँखें मलता हुआ आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगता है। वह एक पतला सा श्वेत कुरता और धोती पहने है। फिर वह अपने पलँग से उठकर युवती के पलँग के निकट जाकर अँगड़ाई और जमुहाई लेता हुआ उसे पुकारता है।]

युवक—प्रिये ! उठो। अरे ! उठो तो।

[जब वह फिर भी नहीं उठती तब युवक उसके पलँग पर बैठ उसे हाथ से हिलाकर जगाता है। युवती चौंककर उठ बैठती है। वह पतली सी श्वेत साड़ी और चोली पहने है।]

युवती—(युवक की ओर देख कर) अरे! तुम हो, बड़ी गहरी नींद लगी थी, क्यों जगा दिया ?

[युवक के गले में हाथ डालकर उसके कंधे पर अपना शिर टिका लेती है।]

युवक—एक कारण से जगाया है।

युवती—(चौंककर युवक की ओर देखते हुए) क्यों ? स्वास्थ्य तो अच्छा है न ?

युवक—हाँ, हाँ, बिलकुल अच्छा है।

युवती—फिर क्यों जगाया ?

युवक—मैंने आज बड़ा अद्भुत स्वप्न देखा है।

युवती—(अँगड़ाई लेते और लेटते हुए) वाह, वाह! स्वप्न सुनाने के लिए मेरी नींद सत्यानाश की। प्रातःकाल न सुना सकते थे ?

युवक—प्रातःकाल तक भूल जाता तो, स्वप्न प्रायः मनुष्य भूल भी तो जाता है।

युवती—भूल जाते तो भूल जाते। तुम्हारे स्वप्न सुनने की अपेक्षा मेरी नींद कहीं अधिक आवश्यक थी।

[करवट ले, उसकी ओर पीठकर सोने का प्रयत्न करती है]

युवक—(झुककर उसका मुँह चूमते हुए) जब तक मेरा स्वप्न न सुन लोगी, मैं न सोने दूँगा।

युवती—देखो, प्यारे, यह तुम्हारी बड़ी जबर्दस्ती है। रात को सृष्टि विकास के, पथ से उन्नति की ओर जा रही है या चक्रवत् घूम रही है इस पर वाद-विवाद करते-करते आधी रात बिता दी, और अब स्वप्न सुनाने को उठा दिया, फिर सोना चाहती हूँ तो सोने नहीं देते; यह भी कोई बात है ?

युवक—अरे ! जिस पर वाद-विवाद किया था वही स्वप्न तो मैंने देखा है। ऐसा स्वप्न है कि सुनकर तुम भी दंग रह जाओगी। सुनो तो, प्रिये।

[तब वह फिर भी नहीं उठती तो युवक उसे गुदगुदाता है]

युवती—(हँसते हुए) तंग करोगे ही ? न सोने दोगे ?

युवक—(हँसते हुए) जबतक स्वप्न न सुन लोगी तबतक कभी न सोने दूँगा।

युवती—(उठकर अँगड़ाई लेते हुए पुनः युवक के गले में हाथ डालकर अपना सिर उसके कंधे पर रख, जमुहाई लेते हुए) अच्छी बात है, सुनाओ।

[युवती मुस्कराते हुए स्वस्थ होकर बैठती है। युवक उसी के निकट बैठता है।]

यवनिका पतन

समाप्त